ओ३म्

आर्य जगत

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 29 मार्च 2015

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 29 मार्च 2015 से 04 अप्रैल 2015

चै.शु 09 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 79, अंक 150, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

महर्षि दयानन्द जन्म दिवस पर अखिल भारतीय वैदिक संगोष्ठी का आयोजन

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्म दिवस पर अखिल भारतीय वैदिक संगोष्ठि का आयोजन समारोह पूर्वक किया गया जिसमें 109 डी.ए.वी. शिक्षण संस्थाओं के 135 संगीत अध्यापकों ने भाग लेकर वैदिक भजनों और गीतों की प्रस्तुति दी। दोनों दिन वैदिक यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें सभा के पदाधिकारियों एवं पधारे हुए प्रतियोगियों ने भाग लिया। दो दिन तक चली प्रतियोगिता के समापन सत्र की अध्यक्षता करते हुए श्री प्रबोध महाजन, उपप्रधान,आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली, ने संगीत शिक्षकों का सम्बोधित करते हुए कहा कि वैदिक विचारों और सिद्धांतों से परिपूर्ण गीतों और भजनों के माध्यम से आर्य समाज के प्रचार प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायें। साथ ही कहा कि यह बहुत ज़रूरी हो गया है कि अध्यापक स्वयं आर्य समाज के विचारों और सिद्धांतो से परिचित हों जिससे वे बच्चों में वैदिक मूल्यों की स्थापना करने में सशक्त हो सकें।

इस प्रतियोगिता में दिल्ली विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्रोफेसरों –डॉ. सुनीता धर, डॉ. हरीश तिवारी, डॉ. कन्न कुमार को निर्णायक के रूप में आमन्त्रित किया गया था। प्रतियोगिता में इस वर्ष कड़ा मुकाबला देखने को मिला। सर्वसम्मति से निम्न प्रतियोगियों को पुरस्कृत किया गया।

प्रतियोगिता में प्रथम स्थान श्री नीलाज्लन मित्रा, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, एनआई टी, आदित्यपुर, जमशेदपुर, झारखण्ड द्वितीय स्थान श्री पुलिन चन्द राउतराम डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, राउरकेला, बसन्तीनगर, राउरकेला, उडीसा, श्री विवेक प्रजापति, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, सेक्टर–56, नोएडा, उत्तर प्रदेश, श्री नरेन्द्र कुमार, डी.ए.वी पब्लिक स्कूल, लॉरेन्स रोड़, अमृतसर तथा तृतीय स्थान श्रीमती सरोवनी मण्डल, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, दुर्गापुर, वैस्ट बंगाल, श्री तुलसीदान वर्मा, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, तलवण्डी, कोटा, राजस्थान, डॉ. अश्विनी शर्मा, डी.ए.वी पब्लिक स्कूल, फतेहाबाद, हरियाणा को मिला। इसके अतिरिक्त श्री अनिल सोनी, कुलाची हंसराज माडल स्कूल, अशोक विहार, दिल्ली विशेष सांन्त्वना पुरस्कार और श्री मनी कुमार, डी.ए.वी. इन्टरनैशनल स्कूल, वेर्का चौक, बाईपास रोड, अमृतसर, श्री कमलजीत शर्मा, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, बी.आर. एस नगर, लुधियाना, श्री फणीश कुमार पवार, एसएलएस डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, मौसम विहार, दिल्ली, श्री रविशंकर मिश्रा, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, आरा, कुजु क्षेत्र, रामगढ, झारखण्ड, श्री चन्दन कुमार लाल, डी.ए.वी. पबिलक स्कूल सेक्टर–6 द्वारका, नई दिल्ली को सान्त्वना पुरस्कार दिया गया।

सान्त्वना स्वरूप सभा की ओर से विजेताओं में प्रथम को 11000, द्वितीय आने वाले तीन को 7500, तृतीय आने वाले चार प्रतियोगियों में प्रत्येक को 5000, और 5 प्रतियोगियों को सांत्वना स्वरूप 3000 तथा इनके अतिरिक्त पहले 25 मे शेष सभी को 1100, रूपये प्रति व्यक्ति के रूप में प्रदान किये गये

वैदिक संगोष्ठि में श्री आर. एस. शर्मा महासचिव डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकर्त्री समिति, श्री अजय सूरी, ब्रि. ए.के. अदलखा, श्री सत्यपाल आर्य, श्री अजय सहगल, श्री कीमती लाल आदि ने पधारकर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई। श्री एस.के शर्मा, मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने विजेताओं को पुरस्कृत किया।

डी.ए.वी कॉलेज फिरोज़पुर में स्वामी दयानन्द जी जन्मदिवस तथा बोधोत्सव मनाया गया

डी.ए.वी. फॉर वूमेन, फिरोज़पुर कैंट में डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति, नयी दिल्ली के प्रधान माननीय श्री पूनम सूरी जी की प्रेरणा से प्राचार्या डॉ. पुष्पिंदर वालिया के नेतृत्व में स्वामी दयानन्द जी का जन्म दिवस तथा बोधोत्सव उत्साहपूर्ण मनाया गया। महर्षि जी के जीवन दर्शन तथा सिद्धान्तों पर निबन्ध लेखन प्रतियोगिता करवाई गयी। इस प्रतियोगिता में कुमारी मनप्रीत व रचिता ने प्रथम, अनु ने द्वितीय व अभिलाषा डोगरा ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। स्वामी जी के जन्म दिवस तथा बोधोत्सव के उपलक्ष्य में एक विशेष हवन आयोजित किया गया। श्री मनमोहन शास्त्री ने वैदिक मंत्रोच्चारण से यज्ञ सम्पन्न किया। प्राचार्या डॉ. वालिया ने अपने उद्‌बोधन में स्वामी दयानन्द जी के जीवन तथा कार्यों पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने 'डी. ए. वी.' के अर्थ और इस नाम के पीछे डी. ए. वी. की महान आत्माओं के दूर दृष्टि की छात्राओं को गहन जानकारी प्रदान की। डॉ. वालिया ने त्याग की मूर्ति महात्मा हंसराज जी और महात्मा आनन्द स्वामी जी को स्मरण करते हुए कहा कि डी.ए.वी. शिक्षण संस्थान आज जिस मुकाम पर खड़े हैं, उसका महापुरुषों को जाता है, जिन्होंने परमार्थ को ही अपना जीवन बना लिया था। छात्राओं को स्वामी जी द्वारा स्थापित आर्य समाज का अर्थ समझाते हुए कहा कि इस समाज का एकमंात्र लक्ष्य है श्रेष्ठ समाज और श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण करना। शान्ति पाठ से यज्ञ सम्पन्न हुआ।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 29 मार्च, 2015 से 04 अप्रैल, 2015

हे सोम! हृदय–कलश में प्रवेश करो

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

पवस्य सोम देववीतये वृषा, इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमाविश।
पुरा नो बाधाद् दुरिताति पारय, क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते।।

ऋग् ९.७०.९

ऋषिः **रेणुः वैश्वामित्रः**। देवता **पवमानः सोमः**। छन्दः **जगती**।

● **(सोम)** हे सोम परमात्मन्! **(तू)**, **(वृषा)** वर्षक **(होता हुआ)**, **(देववीतये)** दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए, **(पवस्य)** प्रवाहित हो, **(इन्द्रस्य)** आत्मा के, **(हार्दि)** हृदय–रूप, **(सोमधानं)** सोम–कलश में, **(आविश)** प्रविष्ट हो।, **(बाधात्)** बाधे जाने से, **(पुरा)** पहले, **(नः)** हमें, **(दुरिता अति)** पापचरणों से लंघाकर, **(पारय)** पार करदे। **(क्षेत्रवित्)** मार्ग का ज्ञाता, **(विपृच्छते)** विशेषरूप से पूछनेवाले के लिए, **(दिशः)** दिशाओं को, **(आह हि)** बताता ही है।

● हे रसागर सोम परमात्मन्! तुम 'वृषा' हो, रस की वर्षा करनेवाले हो। तुम दिव्य गुणों के रस के साथ मेरे अन्दर प्रवाहित होवो। तुम आत्मा के हृदय–रूप सोम–कलश में आकर प्रविष्ट होवो। मेरा आत्मा न जाने कब से सोम–पान के लिए उत्कंठित हो रहा है, उस प्यासे की तृषा को दूर करो। तुम कामवर्षी हो, मेरी कामना को पूर्ण करो। तुम आनन्दवर्षी हो, मुझपर आनन्द की वर्षा करो।

कभी–कभी मेरा आत्मा 'दुरितों' से घिर जाता है। पाप–भावनाएँ उसे आगे बढ़ने से रोकती हैं। पाप–कर्म उसे निगलने के लिए तैयार रहते हैं। आसपास का पापमय वातावरण उसे पाप–मार्ग पर चलने के लिए प्रलोभित करता है। ऐसे समय में हे मेरे सोम प्रभु! क्या तुम खड़े देखते ही रहोगे? क्या तुम मुझे 'दुरितों' से ग्रसा जाने दोगे? क्या तुम मुझे पाप–ताप के प्रहारों से छलनी हो जाने दोगे? क्या तुम मुझे दुराचार–रूप शत्रुओं से आक्रान्त हो जाने दोगे? नहीं, तुम मेरे उद्धारक होकर आओ। इससे पहले कि 'दुरित' मेरे आत्मा पर प्रभुत्व पायें, उसे पतनोन्मुख करें, तुम त्वरित गति से मेरे पास आ जाओ और मुझे उन दुरितों से लंघाकर पार कर दो। संसार का यह नियम है कि जो 'क्षेत्रवित्' है, मार्ग का ज्ञाता है, वह पूछनेवाले को दिशा बताता ही है। तुमसे बढ़कर 'क्षेत्रवित्' बढ़कर मार्गज्ञ अन्य कौन है! अतः हे मेरे सोम प्रभु! मैं तो तुम्हीं से दिशा पूछता हूँ। मैं दिग्भ्रान्त हो रहा हूँ, तुम कुतुबनुमा यन्त्र की सुई बनकर मुझे दिशा दर्शाओ। यदि तुमसे दिशा–ज्ञान न मिला, तो मेरा जीवन–पोत भव–सागर में डूबकर नष्ट–भ्रष्ट हो जायेगा। हे प्रभु! मुझ भूले को सही राह दिखाओ, मुझ भटके को गन्तव्य लक्ष्य पर पहुँचाओ।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

एक ही रास्ता

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में बात हो रही थी कि गायत्री की उपासना करने वाला भक्त जब गायत्री मंत्र का पढ़ता हुआ सविता शब्द पर पहुंचे, उसे अनुभव करना चाहिए कि उसके आस–पास कोई दुनिया नहीं है, केवल अनंत–बेअंत सोई हुई प्रकृति है।

अघमर्षण मंत्र को पाप को धोने वाला मंत्र कहते हैं, परंतु इससे पाप धुलता कैसे है? मनुष्य जब सृष्टि में रमने की बात सोचता है, जब वह देखता है कि जिस भूमि पर वह रहता है, वह कभी इस प्रकार बनी थी, वह एक विशाल सूर्यमंडल में धूल के कण के समान है और अरबों–खरबों सूर्यमंडल इस विश्व में हैं और इन सब को बनाने वाला वह महान् प्रभु है। अव वह सोचता है कि फिर मैं क्या हूँ? मेरा अभिमान क्या है? प्रभु प्यार से, श्रद्धा से, वह अपने सिर को झुका देता है। उस अनन्त की ओर बढ़ता है जिसका अंत कभी नहीं होता। जो अजर और अमर है। इस प्रकार उसके पाप कटते हैं।

सविता से प्रार्थना करो, ''हे महाशक्ति! मेरी बुद्धि को प्रेरणा कर। तू इस विशाल विश्व को बनाने वाली है। इस महान् विश्व को जगाने वाली है। मेरी बुद्धि को जागृत कर दे।

गायत्री का जाप करो। गायत्री पर आचरण भी करो, तभी यह जाप सफल होगा।

अब आगे...

सातवाँ दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो!

कल मैं सविता की बात कर रहा था और बता रहा था कि सविता सूर्य को भी कहते हैं। सविता ईश्वर की प्रेरणा करने वाली शक्ति है – सृष्टि को उत्पन्न करने वाली शक्ति, सबको पालने वाली माँ है और अन्त में सबको अपनी गोद में लेकर सुला देने वाली महाशक्ति। सूर्य तो प्रातःकाल के समय संसार को जगाकर उसे नवजीवन देता है, दिन भर उसे प्रकाश देता है, सायंकाल कहता है, "विश्राम करो, अब सो जाओ। कल प्रातः मैं तुमको नया जीवन दूँगा, नया प्रकाश दूँगा।"

परन्तु आजकल तो कुछ व्यक्ति ऐसे हैं, जिनके लिए सूर्य सविता रहा नहीं। रात्रि बनाई गई थी इसलिए कि मनुष्य विश्राम करे, थकावट दूर करे, दूसरे दिन विश्रांत होकर, सूर्य से प्रेरणा पाकर फिर कार्य में जुट जाये। परन्तु ये सज्जन जिनकी बात मैं करता हूँ, प्रातःकाल के समय उठने का नाम ही नहीं लेते; और फिर उठें किस प्रकार? रात्रि के एक–एक और दो–दो बजे तक तो ये 'रमी' खेलते रहते हैं। अफ्रीका में जाकर मुझे पता लगा कि रमी भी कोई खेल होता है। जो व्यक्ति रात्रि में एक–एक और दो–दो बजे तक जागता रहेगा, वह प्रातः यदि सोयेगा नहीं तो उठेगा कैसे? शास्त्र कहता है कि सूर्य निकलने से दो घड़ी पूर्व शैया त्याग देनी चाहिए। नहा–धोकर उषा का स्वागत करना चाहिए। यह उषा चार वस्तुएँ लेकर आती है, उन्हें बाँटती हुई चली जाती है – बल देती है, वह बुद्धि देती है, धन देती है और यश प्रदान करती है। जो जागते हैं वे इन चारों को प्राप्त करते हैं; जो सोये रहते हैं वे इन चारों से वंचित रह जाते हैं। यह है शास्त्र की आज्ञा। अब बताओ, जो लोग सोये रहेंगे उन्हें क्या प्राप्त होगा? सोनेवालों से मैं पूछता हूँ क्या तुम्हें बल नहीं चाहिए? बुद्धि नहीं चाहिए? धन और यश की कामना नहीं है? नहीं चाहिए तो सोये रहो, कुम्भकर्ण की भाँति, परन्तु याद रक्खो–

हर रात के पिछले पहर में,
एक दौलत लुटती रहती है।
जो जागते हैं वे पाते हैं,
जो सोते हैं, वे खोते हैं।।

'खोते हैं' का अर्थ है नष्ट करते हैं, वंचित रह जाते हैं; परन्तु पंजाबी भाषा में 'खोता' गधे को भी कहते हैं। मैं अफ्रीका में था। एक सत्संग में यह दोहा सुनाया तो एक बच्चे ने मेरे पास आकर कहा, "स्वामी जी, मेरे डैडी (पिता जी) भी खोते हैं, वे भी प्रातःकाल देर तक सोये रहते हैं, परन्तु उनका मुख तो मनुष्यों जैसा है?" मुझे यह बात सुनकर हँसी आ गई। पता नहीं आपके बच्चे आपको क्या समझते हैं, परन्तु ठीक विधि यही है कि प्रातः जल्दी उठो। उस प्रभु का स्मरण करो जिसने उत्पन्न किया है, जो सदा काम आया है, सर्वदा काम आयेगा। उसके सविता–रूप का ध्यान करो, प्रेरणा माँगो उससे और

विश्वास रक्खो यह प्रेरणा मिलेगी।

सविता के पश्चात् गायत्री मन्त्र में एक और शब्द है, भर्गः। जो व्यक्ति इसका अर्थ जानते हैं, जो इसके अन्दर छिपे हुए रहस्य से परिचित हैं, उनके लिए यह शब्द अनन्त सन्तोष का देनेवाला है। यह संसार तो फिसलनी घाटी है न? कई बार मनुष्य फिसल जाता है। इच्छा न होते हुए भी फिसल जाता है। स्वयं न फिसले तो दूसरे धक्का दे देते हैं। स्वच्छ–पवित्र कपड़े पहनकर आप घर से बाहर निकलते हैं, कोई बुद्धिमती बहू ऊपर से कूड़ा–करकट फेंक देती है।

बुद्धिमती बहू की बात तो आपने सुनी होगी। बहुत अभिमान था उसे कि मैं सब–कुछ जानती हूँ। जानती कुछ नहीं थी। एक दिन पति से बोली, "आप कहें तो मैं हलवा बना लूँ?" पति ने कहा, "भाग्यवान्! तुझे हलवा बनाना आता नहीं, तुमसे बनेगा नहीं।" बहू ने कहा, "बनेगा कैसे नहीं; मैं अभी बनाये देती हूँ।" और चूल्हे पर बर्तन रखकर उसने बर्तन में घी, खाण्ड, आटा, पानी सब डाल दिया। अब वह हलवा कैसे बनता? बहू ने कहा, "वास्तव में हलवा तो नहीं बना, आप कहें तो सीरा बना लूँ?" पति ने कहा, "तुमसे सीरा भी नहीं बनेगा।" बहू बोली, "बनेगा कैसे नहीं, थोड़ा–सा पानी और डाल देती हूँ, बन जायेगा।" पानी डालकर देर तक बैठी रही, कुछ हुआ नहीं; बोली, "सीरा तो नहीं बना, आप कहें तो लप्सी बना लूँ?" पति ने कहा, "देवी, तुझसे लप्सी भी नहीं बनेगी।" बहू को क्रोध आ गया। अग्नि प्रदीप्त कर दी। सब–कुछ जल गया। वह बोली, "यह तो सब जल गया है, कहें तो इसे फेंक दूँ?" पति ने कहा, "तुझे फेंकना भी नहीं आयेगा।" वह बोली, "वाह! फेंकने में क्या है, मैं अभी गली में फेंक देती हूँ।" पति ने कहा, "किसी भले मनुष्य को देखकर फेंकना।" वह बर्तन उठाकर फेंकने गई, विलम्ब हो गया, आई नहीं। पति को चिन्ता हुई कि स्वयं न गिर पड़ी हो। उठकर देखने गया, तो सामने आती हुई मिली; पूछा, "इतना विलम्ब क्यों कर दिया?" वह बोली, "आपने कहा था न कि किसी भले मनुष्य को देखकर फेंकना, सो बहुत देर प्रतीक्षा करती रही, कोई भला मनुष्य निकला ही नहीं। अन्त में गाँव का चौधरी निकला बहुत श्वेत कपड़े हुए, मैंने उसी के सिर पर फेंक दिया।"

सो इस प्रकार भी कभी–कभी होता है, न चाहते हुए भी कोई 'बुद्धिमती बहू' श्वेत कपड़ों पर कूड़ा–करवट डाल देती है। यह संसार तो फिसलनी घाटी है न? यहाँ त्रुटि होना असम्भव नहीं। त्रुटियाँ होती हैं, मनुष्यों से होती हैं, बड़ों से, बूढ़ों से, नवयुवकों से, ऋषियों से भी त्रुटियाँ होती हैं।

परन्तु यह भर्गः कहता है, "घबरा नहीं। भूल हो गई तो चिन्ता न कर, मैं तेरे पाप जला दूँगा।" भर्गः का अर्थ है ज्योतिवाला – ऐसी ज्योतिवाला जिससे बड़ी और कोई ज्योति नहीं। इसके साथ ही 'देवस्य' का शब्द है। इसका अर्थ है देने वाला, आनन्द देने वाला, सुख देने वाला; वह प्रत्येक वस्तु देने वाला जिसकी कोई इच्छा कर सकता है। उसका कोश अनन्त है, उसका भण्डार कभी रिक्त नहीं होता। कई अरब, कई खरब वर्षों से वह दिये जाता है; कई अरब, कई खरब वर्षों तक दिये जायेगा। उसके देने का आदि नहीं है, उसके देने का अन्त नहीं है। कई लोग कहेंगे, हम तो माँग–माँगकर थक गये, हमें तो देता नहीं। अरे देता है वह सबको, प्रातः से सायं तक, सायं से प्रातः तक, जन्म से मृत्यु तक, मृत्यु से दूसरे जन्म तक। उसके देने का अन्त नहीं, परन्तु लेने वाले का बर्तन ही टूट गया हो तो उसे मिलेगा क्या? माँगने से पूर्व इस बर्तन को ठीक करो। इस बर्तन का नाम है अन्तःकरण। इसे ठीक करके देखो। इसमें जो छिद्र तुमने बना दिये हैं उन्हें बन्द करके देखो। वह अवश्य देता है, उसके देने का अन्त नहीं है। इस 'देवस्य' के साथ ही एक और शब्द है 'वरेण्यम्'। इस शब्द को बोलते ही होंठ बन्द हो जाते हैं। बाहर का संसार बाहर रह जाता है, अन्दर का संसार जाग उठता है। ओष्ठों के बन्द होने का तात्पर्य यह है कि अब और कुछ कहने का शेष नहीं, कहने को आवश्यकता नहीं। तू वरेण्यम्=वरने के योग्य है, पूजा के योग्य है। तेरी पूजा ही वास्तविक पूजा है। मैंने तुझे पा लिया, अपने–आपको तेरे अर्पण कर दिया। अब भक्त की इस नौका को तार दे या डुबा दे, किनारे पर ले चल या मँझदार में डुबो दे, यह तेरी इच्छा है, मैंने अपने–आपको तेरे ऊपर छोड़ दिया।

इसी को योगदर्शन ने 'ईश्वर–प्रणिधान' कहा। इसी को नारद ने 'अनन्य भक्ति' कहा है। इसी को महर्षि दयानन्द ने 'उपासना' का नाम दिया है और गीता ने 'शरणागति' कहा। इसके सम्बन्ध में ऋषि ने कहा–

धर्मार्थकाममोक्षाणां ज्ञानवैराग्ययोरपि।
अन्तःकरणशुद्धये भक्तिः परमसाधनम्।।

ऐसी भक्ति हो तो फिर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी मिलते हैं। परन्तु ऐसी भक्ति केवल कहने से तो नहीं होती। मैं हो गया किसी का सेवक। कह दिया कि मैं आपका सेवक हूँ, आप मेरे स्वामी हैं। स्वामी ने कहा, "भाई! तनिक कमरे में झाड़ू दे दो।" मैं कहूँ, "अच्छी बात है, श्रीमन्! दे दूँगा।" एक घण्टे पश्चात् स्वामी पूछे, "झाड़ू दे दिया?" मैं कहूँ, "अभी दिये देता हूँ श्रीमान्!" दो घण्टे के पश्चात् वह पूछे, "कमरा साफ़ हो गया?" मैं कहूँ, "बस, करने करने लगा हूँ, स्वामिन!" तीन घण्टे के पश्चात् वह फिर पूछे, पाँच घण्टे के पश्चात् पूछे, दूसरे दिन पूछे, तीसरे दिन, पाँचवें दिन, प्रत्येक बार मैं यही उत्तर दूँ कि "अभी साफ़ किये देता हूँ कमरा, अभी झाड़ू लगाए देता हूँ।" तो स्वामी मेरे–जैसे नौकर का क्या करेगा? यह तो सेवा नहीं है। सेवा तो वह है जो स्वामी की आज्ञा होते ही कर दी जाये। यह है भक्ति का अर्थ। केवल कीर्तन करने, नाम जपने, माला फेरने या सन्यास धारण करके जंगल में चले जाने का नाम भक्ति नहीं। भक्ति वह है जिसे मनुष्य संसार के सारे कार्य करता हुआ, समस्त कर्तव्यों को पूर्ण करता हुआ निरन्तर करता रहे। सब–कुछ परे, परन्तु अपने प्यारे प्रभु को न भूले। उसकी आज्ञा को देखे, उसकी आज्ञा के समक्ष सिर झुका दे।

कई व्यक्ति मुझे कहते हैं, "आनन्द स्वामी, हम भी तेरे साथ गंगोत्री चलेंगे।" मैं कहता हूँ, "अवश्य चलना, परन्तु पहले अपने कर्तव्य को तो पूरा कर लो!" पिछले वर्ष करोलबाग के एक सज्जन ने बड़े विस्तार के साथ मुझसे गंगोत्री का मार्ग पूछा। मैंने बता दिया। वे बोले, "मैं इस वर्ष अवश्य जाऊँगा।" परन्तु वर्ष बीत गया, वे नहीं आए। पिछले दिनों वे मुझे मिले। मैंने कहा, "भाई! आप गंगोत्री नहीं आए? वे बोले, "अभी तैयार हो रहा हूँ।" जो लोग वर्ष–भर तैयार होने में ही लगा दें, उन्हें कोई क्या कहे! इस प्रकार भक्ति नहीं होती। भक्ति तो अपने फल से पहचानी जाती है। उत्सव होते हैं, कीर्तन होते हैं, सत्संग होते हैं, उपदेश दिए जाते हैं, ये सब ठीक हैं, परन्तु यदि इनके पश्चात् भी इनमें सम्मिलित होने वाले के मन में चिन्ता है तो कहना होगा कि वह व्यक्ति भक्ति के मार्ग पर नहीं चला। भक्ति के विषय में तो कहा है–

जब ही नाम हृदय लियो,
भयो पाप का नाश।
जैसे चिनगी आग की,
पड़ी पुरानी घास।।

पाप न रहे तो चिन्ता रहती नहीं। चिन्ता रहे तो इसका अर्थ है कि भक्ति हुई नहीं, नाम को हृदय में धारण नहीं किया।

एक कथा समझाने के लिए सुनाया करता हूँ, आपको भी सुनाता हूँ। नारद मुनि एक बार घूमते–घूमते स्वर्ग में गए। वहाँ विष्णु महाराज विराजमान थे। उन्होंने पूछा, "सुनाओ मुनिराज! संसार का क्या हाल है?" नारद ने कहा, "महाराज, मैं तो आपसे पूछने लगा था कि आप कैसे भगवान् हैं। दुनिया में हर स्थान पर लोग आपको याद कर रहे हैं, स्थान–स्थान पर कीर्तन होते हैं, उपदेश होते हैं, मन्दिरों में आपकी पूजा होती है, लोग आपको पुकारते हैं और आप यहाँ निश्चिन्तता से बैठे हैं।" विष्णु महाराज ने कहा, "तू भोला है नारद! लोग मुझे नहीं चाहते, किसी और को चाहते हैं।" नारद ने कहा, "यह कैसे हो सकता है? मैंने तो देखा है कि वे आपके दर्शनों को बेचैन हैं। एक बार चलकर उन्हें दर्शन दे आइये।" विष्णु महाराज ने कहा, "नहीं नारद! वे लोग मेरा दर्शन नहीं चाहते। केवल कहने की बात है यह। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो कुछ विमान ले जाओ। जो दर्शन करना चाहता है, उसे यहाँ ले आओ। मैं स्वर्ग के द्वार पर खड़ा रहूँगा, वे मेरे दर्शन कर सकेंगे।" नारद ने कुछ विमान लिये। एक नगर के बाहर उन्हें पृथिवी पर उतार दिया। नगर में प्रविष्ट नहीं हुए (निश्चय ही वह करोलबाग में प्रविष्ट नहीं हुए, यहाँ तो बहुत–से भक्त लोग रहते हैं)। एक स्थान पर गए। विचारने लगे– किसको स्वर्ग चलने और भगवान् का दर्शन करने को कहें? सामने से कोई 45 वर्ष के एक सज्जन आते हुए दृष्टिगोचर हुए। बार–बार भगवान् का नाम ले रहे थे। नारद ने सोचा, यह व्यक्ति है इसे ले चलता हूँ। बोले, "श्रीमान् जी! प्रभु का दर्शन करोगे? करना हो तो मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें ईश्वर–दर्शन करा सकता हूँ।" उस व्यक्ति ने प्रसन्न होकर कहा, "प्रभु का दर्शन? प्रभु का दर्शन मिल जाये बाबा, तो और मुझे चाहिए क्या!" नारद बोले, "तो फिर आओ मेरे साथ। नगर के बाहर विमान खड़ा है, उसमें बैठो, मैं तुम्हें प्रभु के दर्शन कराऊँगा।" वह व्यक्ति बोला, "मैं चलूँगा अवश्य, नारद जी! परन्तु आठ दिन के पश्चात् मेरे पुत्र का विवाह होने वाला है, वह हो जाये तो फिर अवश्य चलूँगा।" नारद महाराज आठ दिन के स्थान पर पन्द्रह दिन के पश्चात् आये; बोले, "तुम्हारे पुत्र का विवाह हो गया होगा?" वह बोला, "जी महाराज! आपकी कृपा से बहुत सुन्दर बहू मिली है। बहुत उत्तम रीति से विवाह हुआ। "नारद ने कहा, "तो आओ फिर चलें!" उसने कहा, "अभी–अभी तो विवाह हुआ है। बहू की गोद हरी हो जाये, एक बच्चा हो जाये तो फिर मैं अवश्य चलूँगा।" नारद बोला, "अच्छा यूँ ही सही।" एक वर्ष पश्चात् नारद फिर आये; बोले, "बच्चा हो गया भक्त जी?" भक्त जी बोले, "हाँ महाराज! बहुत सुन्दर बच्चा है, मोटी–मोटी आँखें हैं, उसकी, बटर–बटर देखता है, मेरी अँगुली पकड़ लेता है।" नारद ने कहा, "तो आओ अब चलें!" भक्त ने कहा, "परन्तु अभी तो बच्चा बहुत छोटा है। उसे कुछ बड़ा हो लेने दो, फिर चलूँगा।" नारद 'बहुत अच्छा' कहकर चले गए। पाँच वर्ष पश्चात् फिर आये। बच्चा बड़ा हो गया था; बोले, "चलो भक्त, अब चलें।" भक्त ने कहा, "नहीं महाराज! अभी तो केवल पांच ही वर्ष का है। मेरा पुत्र है मूर्ख, उसकी देखभाल नहीं कर सकता। कुछ वर्ष और ठहर जाइये, इस बच्चे को बुद्धिमान हो जाने दीजिये।" नारद वापस चले गये; दस वर्ष पश्चात् पुनः आये। बच्चा जवान हो गया था, भक्त बूढ़ा। उसकी कमर टेढ़ी हो गई थी, आँखें बन्द, लाठी टेककर चलता था। नारद ने कहा, "अब तो चलो! अब

शेष पृष्ठ 07 पर ☞

वेद एवं वैदिक शास्त्रों में विज्ञान का सूत्र विद्यमान था

● **हरिश्चन्द्र वर्मा “वैदिक”**

लाखों वर्ष पूर्व वेदों में विज्ञान का मूल उपादान अणु–परमाणु और उससे भी सूक्ष्म कणों का वर्णन किया गया था और वेदों से ही निकाले गये ऋषियों द्वारा शास्त्रों में भी उन कणों का वर्णन किया गया है– किन्तु मध्यकालीन से पूर्व एवं 16वीं शताब्दी तक भारत के विद्व पण्डितों और ज्ञानी शिल्पियों, कारीगरों ने खोज नहीं की कि जल से, ताप से बिजली किस तरीके से उत्पन्न की जा सकती है। गुप्तकाल में लोहा आदि सभी धातुएं मौजूद थीं, किन्तु कोई कुछ ऐसा मशीन नहीं बना जिससे बिजली को पैदा किया जा सके।

ईश्वर ने तो एक दूसरे का शब्द सुनने के लिये स्वाभाविक रूप से वैज्ञानिक रचना पहले ही उत्पन्न कर दी थी, अब इसके आगे की खोज करनी थी कुछ ऐसा परीक्षण द्वारा मशीन का निर्माण नहीं कर सका कि वायु से सूक्ष्म जो कणों का तरंग सर्वत्र व्याप्त है, उसे जानकर ‘बेतारयन्त्र’ बनाकर उसके द्वारा शब्दों को उसके माध्यम से दूर लोगों तक पहुंचा सके। जैसा कि वेद में– ‘श्रुतिहवन’ हमारी प्रार्थनाओं को सुनने और दूसरों तक पहुंचाने में भी वायु समर्थ है। इस मंत्र का अर्थ करते हुए ऋषि दयानन्द ने लिखा है– जीवो वायु निमित्तनैव शब्दानामुच्चारणंश्रवणं च कर्त्तुंशक्नोति। अर्थात् जीवात्मा वायु के द्वारा ही शब्दों का उच्चारण श्रवण करने में समर्थ होता है। ऋषि के इस अलौकिक अर्थ को पढ़कर लोग इसको एक कल्पना समझते थे, लेकिन आज विज्ञान के आविष्कारों ने इसकी सत्यता को सिद्ध करके दिखला दिया है और हमको अनुभव हुआ है कि ऋषि दयानन्द की दिव्यदृष्टि कितनी दूर तक पहुँच सकती थी। हम लोग जो परस्पर बात करते हैं वह शब्द वायु के द्वारा ही दूसरों के कानों तक पहुंचती है।

जिस प्रकार तालाब में एक ढेला फेंकने से गोल–गोल लहरें चारों ओर फैलती हैं, उसी प्रकार जो बात हम करते हैं वह वायुमण्डल में फैल जाती है और उसको बेतार के तार का यंत्र ग्रहण करता है। इस तरह हम यहाँ बैठे उस मशीन को अपने पास में रखकर लंदन में होते हुए व्याख्यान को सुन सकते हैं।

वेद एवं वैदिक भाषा ईश्वरीय देन था जो आदि ऋषियों को प्राप्त हुआ था। सबसे प्राचीन भाषा वैदिक संस्कृत थी, बाद में लौकिक संस्कृत और उससे हिन्दी एवं देश देशान्तर के भाषा बने। तात्पर्य यह है कि संस्कृत भाषाओं की जननी है।

और जिस प्रकार वेदों से ‘0’ शून्य का आविष्कार भारत में ब्रह्मगुप्त ने किया अंक गणित का आविष्कार 200 ई. पू. भास्कराचार्य ने किया। बीज गणित आदि का आविष्कार आर्यभट्ट ने 499 ई. पू. किया।

विश्व का सबसे पहला औषधि विज्ञान भारतीयों ने आयुर्वेद के रूप में किया। चरक ने 2500 वर्ष पूर्व औषधि विज्ञान को आयुर्वेद के रूप में संकलित किया। लिम्का बुक ऑफ रिकाड्‌र्स के अनुसार 400 ई. पू. सुश्रुत (भारतीय चिकित्सक) ने सर्वप्रथम प्लास्टिक सर्जरी का प्रयोग किया।

इस प्रकार भारतीय गवेषकों ने गुप्तकाल के समय एवं उसके पश्चात् अनेक आविष्कार किये। परन्तु किसी किसी यन्त्र या विमान आदि को बनाने के लिये किसी कारखाने का निर्माण नहीं किया। विमानादि का नाम केवल ऋषियों के ग्रन्थों में ही सीमित रह गया, उन्हें क्रियान्वित भारत के ज्ञानी गुणियों ने नहीं किया। भाप=वाष्प शक्ति का ज्ञान करके तीव्रगति से चलने वाली गाड़ी का भी निर्माण नहीं किया। ऐसे ही बहुत से आविष्कार यदि गुप्त काल एवं उसके पूर्व के गवेषक जन चाहते तो वैदिक विद्वानों से मिलकर अनुसंधान द्वारा वैज्ञानिक यन्त्रों के निर्माण से बहुत कुछ बना सकते थे। हमारे भारतीय शिल्पियों को चुम्बकीय शक्तियों का भी ज्ञान था– उदाहरण के लिये ‘सोमनाथ का मंदिर था’ (इसका इतिहास हम बाद में लिखेंगे)।

वैदिक यज्ञ और योग का विज्ञान लाखों वर्ष पूर्व हमारे ऋषियों द्वारा हो चुका था। ऋषि लोग वायु शोधन एवं वृष्टि कारक, वृष्टिरोधक यज्ञ बराबर किया करते थे, आज भी विशेष–सामग्रियों से वायु शोधन तथा वृष्टिकारक आदि यज्ञ आर्य विद्वानों द्वारा होते रहते हैं।

इसी प्रकार प्राचीन काल से ही अष्टांग योग की साधना की जाती थी। आज भी ऋषि पतंजलि के अनुसार यौगिक क्रियाओं द्वारा बाबा रामेदव अनेक रोगियों के रोग कम कर दिये हैं।

अब प्रश्न होता है कि सोने और हीरे जवाहरात तथा विज्ञान ज्ञान से सम्पन्न भारत विमानादि का निर्माण क्यों नहीं कर सका? इसके मूल कारण राजाओं और मंत्रियों के कुलगुरु ब्राह्मण थे। इन्होंने वेद शास्त्रों एवं गीता के ज्ञान से सबको वंचित रखा, केवल अपने पुराणों को ही सनातन धर्म बताया। यथार्थ ज्ञान से सबको अनभिज्ञ रखा गया था। उदाहरण के लिये उस समय कविकाल में ‘जयदेव रचित’ विद्वानों के प्रतिरोध के अभाव में ‘राधा को ही (भागवत वालों ने) श्री कृष्ण की प्रेमिका और रासलीला करते थे बताया। जिनकी मूर्तियाँ राधेकृष्ण की आज भी उसी प्रकार बनाई जाती हैं।

मध्यकाल के पूर्व से ही उस समय के ब्राह्मणों के कहने पर मंत्रिगण मंदिरों और एक से एक दर्शनीय देवी–देवता के नाम से मूर्तियों को बनाने में ज्ञानी शिल्पियों को प्रेरित–प्रोत्साहित करते रहे। अतः सारी बुद्धि, ज्ञानी, कारीगरों और शिल्पियों से केवल राजमहलों, किलों, तोप और तीर धनुष, तलवार बनाने के अलावा, वैज्ञानिक खोज की तरफ उन्हें प्रेरित नहीं किया गया। उस समय उन सबकी धर्म तारण ‘हार–देवी–देवता’ की मूर्तियाँ ही थी। उस समय ब्राह्मणों को देव तुल्य माना जाता था।

सन् 1026 ई. में विशाल भारत की धार्मिक राजधानी– ‘सोमनाथ’ के डेढ़ सौ वर्षों से सुख्यात मंदिरों के स्फटिक शिवलिंग (जिसके ऊपर चुंबकीय शक्ति से निराधार टंगा हुआ चंद्रमा जैसा चमकता रहता था) 200 मन सोने के सिकड़ों में बंध स्वर्ण घंटिया बजती थीं। यहाँ 600 नाचने–गाने बजाने वाले देवदास–देवदासी व कलाकार–चित्रकार स्थायी ढंग से रहते थे। ग्यारह सौ स्थायी ब्राह्मण पुजारी भी रहते थे। जब महमूद गजनवी तोड़–फोड़ कर सोने–चाँदी–हीरे मणियों को लूटने पहुँचा, तब वहां के राजा महेन्द्र सोलंकी ने मंदिर के रक्षार्थ अपी सेना भेजने को आग्रह किया, तब पुजारियों ने कहा कि ये जाग्रत शिवलिंग हैं, बाबा की इस नगरी में घुसते ही मूर्ख मदांध महमूद ससैन्य जलकर भस्म हो जायेगा। भला हमारे भगवान को कौन छू सकता है!

लेकिन हुआ क्या? जब गजनवी ने आक्रमण किया तब मंदिर की चारों तरफ की दिवारों को तोड़ते ही शिवलिंग ‘गिर पड़ा’। उसके बाद भयंकर मारकाट शुरू कर दिया, तो पुजारी सब मूर्त्तियों से लिपट कर रोने लगे और भगवान से रक्षा की गुहार करने लगे।

पुराणों के प्रचार के कारण देश, जाति और धर्म की रक्षा का भार भी अपने परिश्रम और पुरुषार्थ से न कर इन ब्राह्मणों ने इसका भार भी भगवान पर छोड़ दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि आक्रमणकारियों ने मूर्तियों तोड़ डालीं, मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया, तथा पंडितों को मारकर अरबों, खरबों रुपये के हीरे मोती, सोने और जवाहरात सैकड़ों ऊँटों पर लादकर अपने देश ले गये और इस प्रकार उसने कुल 17 बार मंदिरों को लूटा, फलस्वरूप सोने की चिड़िया कहे जाने वाला भारत कंगाल होने लगा। तब भी धर्मान्ध लोग मूर्तियों को आज भी भगवान मानकर उन सब की पूजा–पाठ कर रहे हैं।

कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट के जज सर विलियम जोंस ही थे, जो संस्कृत साहित्यों–ग्रंथों को पढ़ने के बाद दुनियाँ को चिल्ला, चिल्ला के अपने लेखों से बताये हिंद देश और हिंदू धर्म को सपेरों का देश कहना गलत है। बल्कि एक एक पन्ना से सैंकड़ों शेक्सपियरों और वैज्ञानिकों को जन्म देने वाले काफी रोचक और समृद्ध साहित्य यहीं भरे पड़े हैं। ऐसे हिन्दू धर्म के प्रशंसक विद्वान को कलकत्ता के जिस पंडित ने संस्कृत सिखलाया था उसे वहाँ के पण्डितों ने पुरस्कृत करने के बजाय जातिच्युत कर दिया।

बात सच्ची है यूरोप आदि विदेशी लोग जो ई. पूर्व कुछ नहीं जानते थे, जब 16वीं शताब्दी के पश्चात् ईष्ट इण्डिया कंपनी के माध्यम से अंग्रेजों ने भारत में प्रवेश प्रारंभ किया तभी से क्रमशः वे लोग विज्ञान को जानने लगे। फलतः 18 एवं 19वीं शताब्दी से उनके द्वारा विज्ञान का चमत्कार होने लगा। उन्होंने रेलगाड़ी और हवाई जहाज आदि का निर्माण का डाला। और भारत के लोग अपने–अपने मत, और पंथ को बढ़ाने में लगे रहे। ब्राह्मणों के दिये गुरु मंत्र ‘हरे राम, हरे कृष्ण’ को जपने लगे, आज भी उन्हें ईश्वर मानकर जप रहे हैं। जबकि न श्रीराम न ईश्वर थे न श्री कृष्ण। अतः श्रीराम और श्रीकृष्ण ने स्वयं को कभी परमेश्वर नहीं कहा।

वेदशास्त्र के अनुसार प्राचीन काल के हिंदू (आर्य) लोग योग–प्राणायाम द्वारा ही ईश्वर की उपासना करते थे। किंतु ब्राह्मणवादियों ने इसे धीरे–धीरे साइड करके इसके जगह पर खर्चीले धर्माडंबरों को ही जन–जन में प्रचारित कर दिया।

इन्हीं कुलगुरु ब्राह्मणों के चलते भारत के राजाओं की हार हुई (देखिये ‘सच्चाहिंदू’ पुस्तक को, – लेखक हैं– पं. आर्यगिरि, निंगा, आसनसोल, पं. बंगाल–713370) फलतः 700 वर्ष मुसलमान और 200 वर्ष विदेशी अंगरेजों ने राज्य किया, इन नौ सौ वर्षों में भारत को निर्धन बना दिया था।

बहुदेववाद,जातिवाद,पशुहिंसा–बलिप्रथा आदि धार्मिक–पाखंडों से दुःखी होकर महात्मा बुद्ध पुरोहितों से पूछे कि ये सब गलत बातें वेद में नहीं हो सकतीं। यदि कहीं

शेष पृष्ठ 07 पर ☞

उत्कृष्ट शङ्का समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका– कृपया बुद्धि, मन के बारे में विश्लेषण कीजिये।

समाधान– बुद्धि और मन दो अलग–अलग वस्तुएँ हैं। ये दोनों अन्त:करण कहलाते हैं। अत:करण का आशय शरीर के अंदर काम करने वाले साधन से है। 'अंत:' अर्थात् 'अंदर' और 'करण' अर्थात् 'साधन' (काम करने के साधन)।

कुछ बाह्य करण हैं। ये शरीर से बाहर काम करने के साधन हैं। **पाँव, आँख आदि–आदि ये जो इन्द्रियाँ हैं, ये बाह्य करण है।**

● **'मन–बुद्धि' दो अंत:करण हैं। इसके साथ एक और अंत:करण भी है, उसका नाम है 'अहंकार'।** इस प्रकार 'अंत:करण' की कुल संख्या तीन है, और नाम चार हैं। मन और चित्त एक ही चीज के दो नाम हैं। दूसरी चीज– बुद्धि है और तीसरी चीज– अहंकार है। चीजें तीन, नाम चार।

शंका– क्या मन जड़ है? उसका आकार कितना है?

समाधान– मन जड़ है। यह प्रकृति से बना है। 'प्रकृति' सत्त्व, रज, तम के समूह का नाम है। सबसे छोटे तीन प्रकार के परमाणु (स्मॉलेस्ट पॉर्टिकल–तत्त्व) का नाम है– 'प्रकृति'। उससे महत्त्व यानि 'बुद्धि' बनी। बुद्धि से हम निर्णय लेते हैं। महत से एक और 'अन्त:करण' बना। जिसका नाम है– 'अहंकार'। अहंकार से हम अपने अस्तित्त्व की अनुभूति करते हैं। इस अहंकार से फिर पाँच तन्मात्राएं और दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ पहली बाह्य और दूसरी आंतरिक इन्द्रिय बनीं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्म इन्द्रियाँ बाह्य इन्द्रियाँ कहलाती हैं। और आन्तरिक इंद्रिय है– 'मन'। यह मन प्रकृति से बना है। सांख्य दर्शन के सूत्र (1/615) और योग दर्शन के सूत्र (1/2) के व्यास भाष्य में इस बारे में बतलाया गया हैं।

● चित्त नामक पदार्थ यानि मन, सत्त्व, रज, तम नामक तीन गुणों से बना हआ है। तीन गुणों के स्वभाव वाला होने से मन त्रिगुणात्मक हैं। **मन जड़ है, यह इसका प्रमाण है।**

● **मन का आकार बहुत छोटा है।** यह माइक्रोस्कोप से भी नहीं दिखता है। यह इतना छोटा है कि आप इलेक्ट्रो–माइक्रोस्कोप से देखेंगे, तो भी नहीं दिखने वाला।

● जब आत्मा शरीर छोड़कर के पुर्नजन्म में जायेगा, तो यह 'मन' उसके साथ चला जायेगा। अर्थात् पूरा सूक्ष्म शरीर आत्मा के साथ जाएगा। पाँच इन्द्रियाँ भी जायेंगी, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, एक मन, एक बुद्धि, एक अहंकार और पाँच तनमात्रायें; ये अठारहण चीजें 'आत्मा' के साथ चली जायेंगी। इन अठारह चीजों का नाम है– 'सूक्ष्म शरीर'। **यह सूक्ष्म शरीर इस चेतन आत्मा के साथ हर बार पुर्नजन्म में चलता रहता है। जब तक मुक्ति न हो जाये तब तक यह पूरा सूक्ष्म शरीर आत्मा के साथ चलेगा।**

● जब आत्मा स्थूल शरीर छोड़कर जाती है तो सूक्ष्म शरीर कहाँ चला गया, किसी को पता नहीं चलता। इससे आप अनुमान लगा सकते हैं कि यह कितना सूक्ष्म होगा। इसको आप लोहे के बॉक्स में बंद करो, काँच की पेटी में बंद करो, ये कहीं नहीं रुकने वाला, सब तोड़–फोड़ के निकल जायेगा। तोड़–फोड़ का मतलब यह नहीं कि काँच फट जायेगा। ऐसा कुछ नहीं होगा, वो चुप–चाप निकल जायेगा। ये इतना छोटा है कि उसमें से पार हो जाता है।

103. शंका– मन, बुद्धि और अहंकार क्या काम करते हैं?

समाधान– मन दो काम करता है। **मन से संकल्प–विकल्प करते हैं।** संकल्प पॉजीटिव थॉट है, विकल्प– नेगेटिव थॉट है। जब सकारात्मक विचार करते हैं तो उसका नाम है– 'सकंल्प'। जब उससे विपरीत विचार करते हैं तो उसका नाम है– 'विकल्प'। दोनों तरह के विचार होते हैं। उनको करने का साधन है 'मन'। उदाहरण के लिये जब आपको योग शिविर की सूचना मिली थी तो आपने सोचा होगा कि, शिविर में जाऊँ या नहीं जाऊँ। **शिविर में जाऊँ–यह संकल्प है। नहीं जाऊँ – यह विकल्प है।** जब तक ये दो विचार रहेंगे, तब तक इस विचार को करने का साधन है– 'मन'। तब इसका नाम 'मन' होता है।

● **जब यही मन पुरानी घटनाओं को स्मरण करने में सहयोग देता है, स्मृतियाँ उत्पन्न करता है, तब इसको 'चित्त' कहते हैं।** जैसे कम्प्यूटर के अंदर हार्डडिस्क होती है और उसके अंदर बहुत सी फाइल सेव कर एकत्र कर देते हैं। और हम आवश्यकता अनुरूप जो चाहें वो फाइल खोल लेते हैं। इसी प्रकार मन भी हार्डडिस्क के समान है। उसमें बहुत सारे संस्कार जमा रहते हैं। **जिसे कम्प्यूटर की भाषा में 'फाइल' कहते हैं, उसे ही हम आध्यात्मिक भाषा में 'संस्कार' कहते हैं।** मन में जमा संस्कारों में से जो संस्कार हम उठाना चाहें, जो स्मृति लाना चाहें, वो हम ले आते हैं। वो फाइल खुल जाती है अर्थात् वो संस्कार जाग जाते हैं। और हमें वो चीज स्मरण हो आती है। इस प्रकार जब स्मरण करने का काम करते हैं, तब इसका नाम चित्त होता है। ये दोनों काम एक ही वस्तु करती है। बुद्धि इससे अलग पदार्थ है।

● आपके मन में दो विचार थे, कि योग शिविर में जाऊँ या नहीं जाऊँ? आपको दो में से एक निर्णय लेना पड़ा कि जाऊँ या नहीं जाऊँ। अपने अंतिम निर्णय ले लिया कि जाऊँगा। वहाँ जाने से मुझे कुछ लाभ होगा इसलिये शिविर में जाऊँगा। जब आपने यह डिसीजन लिया, दो में से एक फाइनल हो गया, कि मैं जाऊँगा, वो बुद्धि की सहायता से हुआ। बुद्धि का काम है– निर्णय दिलवाना, निर्णय लेने में सहयोग देना। **बुद्धि निर्णय लेने का साधन है।** जैसे आँख देने का साधन है। आँख के बिना आप नहीं देख सकते हैं, मन के बिना विचार नहीं कर सकते, ऐसे ही बुद्धि के बिना डिसीजन नहीं ले सकते। इस प्रकार **मन का काम अलग है, बुद्धि का काम अलग है।** ये दो अलग–अलग साधन है। दोनों अंत:करण हैं।

● तीसरा साधन है– अहंकार। अहंकार का काम है– आत्मा को अपनी अस्तित्त्व की अनुभूति कराना। आँख के बिना आप देख नहीं सकते। कान के बिना आप सुन नहीं सकते। अहंकार के बिना आप ये अनुभव नहीं कर सकते कि– मैं हूँ। सबको अनुभूति होती है कि– मैं हूँ। ऐसा तो कोई भी नहीं है जिसको ये लगता हो कि मैं नहीं हूँ। **मैं हूँ, ये अनुभूति हमें अहंकार नामक पदार्थ करायेगा।** जीवात्मा को उसकी सहायता मिलेगी तो व्यक्ति अनुभव करेगा कि, मैं हूँ। जब अहंकार भी नहीं रहे या अहंकार का काम बंद हो जाये या वो आत्मा से अलग हो जाये, तो आत्मा को भी अनुभूति नहीं होगी कि, मैं हूँ।

104. शंका– चित्त परिवर्तनशील है। कभी सत्त्व गुण, कभी तमोगुण, कभी रजोगुण प्रधान होता रहता है। क्या खान–पान से ऐसा होता है? कहते हैं– 'जैसा खाए अन्न, वैसा बने मन'।

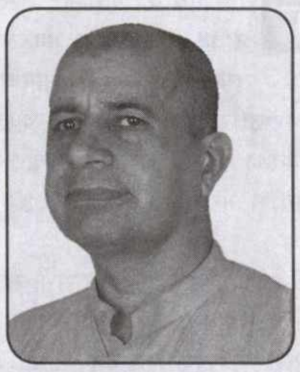

समाधान– यह बात ठीक है। चित्त परिवर्तनशील है। इस पर खान–पान का असर पड़ता है।

● अगर कोई व्यक्ति शराब पी लेगा, कोई भांग खा लेगा, तो उसका असर होगा। तब चित्त तासमिक हो जाएगा। कोई तेज मिर्ची मसाले खाएगा, तो उसका असर होगा। उसका चित्त फिर उतना सात्त्विक नहीं रहेगा, बिगड़ जाएगा। राजसिक भोजन खाएगा–पिएगा, मन बिगड़ जाएगा। मन में चंचलता आएगी।

● इसलिए सात्त्विक भोजन चाहिए। घी, दूध, फल, मिठाई, शुद्ध, साफ भोजन खायें। उचित मात्रा में खाएँ। दो सूत्र याद रखें–

पहला– **थोड़ा खाओ, सुखी रहो।**
दूसरा– **थोड़ा खाओ, लंबा जीओ।**

इस तरह से चलेंगे तो मन ठीक रहेगा। योगाभ्यास ठीक चलेगा और व्यक्ति सुख से जीएगा।

● मन सृष्टि के आरंभ में एक बार उत्पन्न होता है, और शीघ्र नष्ट नहीं होता। ईश्वर ने एक बार मन को बना दिया, अब वो प्रलय काल तक चलेगा। वही मन हर जन्म में बार–बार चलता रहेगा। उसमें थोड़ी बहुत घिसावट होती है। जो चीज बनती है, वह बिगड़ती ही है, यह नियम है। चित्त भी उत्पन्न हुआ है, तो इसमें भी थोड़ी–थोड़ी घिसावट अवश्य होगी। परन्तु इसमें घिसावट की दर (मात्रा या गति) बहुत कम है।

● **चित्त या मन दो ही अवस्थाओं में पूरी तरह नष्ट होता है। या तो उसका मोक्ष हो जाए या तो प्रलय हो जाए। तब आत्मा से मन अलग हो जाएगा।** अन्यथा सृष्टि के प्रारंभ से अंत तक वही एक मन आत्मा के साथ हर जन्म में चलता रहेगा।

● जब सृष्टि का प्रलय होगा, तो हर चीज जो बनती है, वो टूटेगी। इसलिए मन भी टूटेगा, बुद्धि भी टूटेगी। सब चीजें नष्ट हो जाएँगी। नई सृष्टि में फिर दोबारा बनेंगी। प्रकृति वाला मन मोक्ष में साथ में नहीं जाएगा।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

गायत्री मन्त्र विवेचन

● डा. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

गायत्री मंत्र का प्रत्यक्षतः उल्लेख ऋग्वेद में एक बार मण्डल 3 सूक्त 62 मंत्र 10, सामवेद में एक बार उत्तरार्चिक अध्याय 13 खण्ड 4 (सामवेद 1462), यजुर्वेद में चार बार अध्याय 3 मन्त्र 34, 22/9, 30/2 तथा 36/3 है।

सामवेद को छोड़कर इन सभी स्थलों पर ऋषि दयानन्द का भाष्य मिलता है। स्वामीजी ने अपने ऋग्वेद भाष्य और यजुर्वेद भाष्य के अतिरिक्त संस्कारविधिः, पञ्चमहायज्ञविधिः तथा सत्यार्थप्रकाश में भी इस गायत्री मन्त्र का अर्थ किया है। सभी स्थानों पर ऋषि दयानन्द के अर्थ में विशिष्टता पाई जाती है। इसलिए ऋषि दयानन्द द्वारा इस मन्त्र के अनेक स्थानों पर किये गये अर्थों को हम पाठकों के लाभार्थ एकत्र उपस्थित कर रहे हैं।

सत्यार्थ प्रकाश में गायत्री मन्त्र का अर्थ–

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रयोदयात्।। –(यजुर्वेद 36/ 3)

(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम हैं, क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे– अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका वैसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।

अब तीन महाव्याहृतियों के अर्थ संक्षेप से लिखते हैं– 'भूरिति वै प्राणः' 'यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः' जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है उस प्राण का वाचक होके 'भूः' परमेश्वर का नाम है। 'भुवरित्यपानः' 'यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः' जो सब दुःखों से रहित, जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। 'स्वरिति व्यानः' 'यो विविधं जगद् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः' जो नानाविध जगत् में व्यापक होके सब का धारण करता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'स्वः' है। ये तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यक (प्रपा. 7। अनु. 5) के हैं।

(सवितुः) 'यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य' जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य का दाता है (देवस्य) 'यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः' जो सर्वसुखों का देनेहारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो (वरेण्यम्) 'वर्त्तुमर्हम्' स्वीकार करने योग्य अतिश्रेष्ठ (भर्गः) 'शुद्धस्वरूपम्' शुद्धस्वरूप और पवित्र करने वाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है (तत्) उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग (धीमहि) 'धरेमहि' धारण करें। किस प्रयोजन के लिये कि (यः) 'जगदीश्वरः' जो सविता देव परमात्मा (नः) 'अस्माकम्' हमारी (धियः) 'बुद्धीः' बुद्धीयों को (प्रचोदयात्) 'प्रेरयेत्' प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों को छुड़ाकर अच्छे कामों से प्रवृत्त करे।

'हेपरमेश्वर!हेसच्चिदानन्दानन्तस्वरूप! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव! हे कृपानिधे न्यायकारिन्! हे अज निरञ्जन निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार सर्वजगत्पितः सकलजगदुत्पादक! हे अनादे विश्वम्भर सर्वव्यापिन्! हे करुणमृतवारिधे! सवितुर्देवस्य तव यदों भूर्भुवः स्ववरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेम वा 'कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह – हे भगवन्! यः सविता देवः परमेश्वरो भवानस्माकं धियः प्रचोदयात्, स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतु। नातोऽन्यद्वस्तुभवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कञ्चित् कदाचिंन्मन्यामहे।'

> **(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम हैं, क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे– अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका वैसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।**

हे मनुष्यो! जो सब मनुष्यों में समर्थों; सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप; नित्यशुद्ध–नित्यशुद्ध–नित्यमुक्तस्वभाववाला, कृपासागर, ठीक–ठीक न्याय का करनेहारा; जन्म–मरणादि क्लेशरहित, आकार (विकार) रहित; सब के घट–घट का जानने वाला; सबका धर्ता, पिता, उत्पादक; अनादि, विश्व का पोषण करनेहारा (सर्वव्यापक); सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है, उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरूप है उसी को हम धारण करें। इस (=किस) प्रयोजन के लिये कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामिस्वरूप हमको दुष्टाचार अधर्मयुक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार सत्यमार्ग में चलावे, उसको छोड़कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें। क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। वही हमारा पिता, राजा, न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है। (सत्यार्थ–प्रकाश प्रथम तथा तृतीय समुल्लास)

पञ्चमहायज्ञविधि में गायत्री मन्त्र का अर्थ

अथ गुरुमन्त्र–

ओ३म् (यजुर्वेद, अध्याय 40, मन्त्र 17, **भूभुर्वः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य। धीमहि।**

धियो यो नः प्रचोदयात्।। (यजुर्वेद, अध्याय 36, मन्त्र 3; ऋग्वेद, मण्डल 3, अनुवाक 5, सूक्त 62, मन्त्र 10)

भाषार्थ

अथ गुरुमन्त्रः– (ओं भूर्भुवः स्वः)। जो अकार, उकार और मकार के योग से 'ओम्' यह अक्षर सिद्ध है, सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है, जिसमें सब नामों के अर्थ आ जाते हैं। जैसे पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है, वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है। इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है।

जैसे अकार से–(विराट्) जो विविध जगत् का प्रकाश करनेवाला है। (अग्निः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है। (विश्वः) जिसमें सब जगत् प्रवेश कर रहा है, और जो सर्वत्र प्रविष्ट है इत्यादि नामार्थ अकार से जानना चाहिए।

उकार से–(हिरण्यगर्भः) जिसके गर्भ में प्रकाश करने वाले सूर्यादि लोक हैं, और जो प्रकाश करनेहारे सूर्यादि लोकों का अधिष्ठान है। इससे ईश्वर को 'हिरण्यगर्भ' कहते हैं। ज्योति के अर्थ हिरण्य, अमृत और कीर्ति हैं। (वायुः) जो अनन्त बलवाला और सब जगत् का धारण करनेहारा है। (तेजसः) जो प्रकाशस्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है इत्यादि अर्थ उकार से जानना चाहिए। तथा मकार से–(ईश्वरः) जो सब जगत् का उत्पादक, सर्वशक्तिमान्, स्वामी और न्यायकारी है। (आदित्यः) जो नाशरहित है। (प्राज्ञः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है। इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना। यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया गया।

अब संक्षेप से महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं– (भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीने का हेतु, और प्राण से भी प्रिय है, इस से परमेश्वर का नाम 'भूः' है। (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वालों, मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है, इसलिए परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सब को नियम में रखता, और सब को ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है, इससे परमेश्वर का नाम 'स्वः' है। व्याहृतियों का संक्षेप से अर्थ लिख दिया।

अब गायत्री मंत्र का अर्थ लिखते हैं– (सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करनेहारा और ऐश्वर्य का देनेवाला है, (देवस्य) जो सब के आत्माओं का प्रकाश करनेवाला और सब सुखों का दाता है उस (वरेण्यम्) जो अत्यन्त ग्रहण करने योग्य, (भर्गः) शुद्ध विज्ञान स्वरूप है, (तत्) उसको (धीमहि) हम लोग सदा प्रेमभक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें। जिस प्रयोजन के लिये ? कि (यः) जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है, वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रयोदयात्) कृपा करके सब बुरे कामों से अलग करके सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करे।

इसलिए सब लोगों को चाहिए कि सत् चित् आनन्दस्वरूप, नित्यज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, व्यापक, कृपालु, सब जगत् के जनक और धारण करनेहारे परमेश्वर ही की सदा उपासना करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्य देह रूप वृक्ष के चार फल हैं, वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वथा सब मनुष्यों को प्राप्त हों। यह गायत्री मन्त्र का अर्थ संक्षेप से हो चुका। (पञ्चमहायज्ञविधिः)

संस्कारविधि में गायत्री मन्त्र का अर्थ

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात्।। (यजुर्वेद 36/3)

अर्थ–(ओ३म्) यह मुख्य परमेश्वर का निज नाम है, जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं, (भूः) जो प्राण का भी प्राण, (भुवः) सब दुखों से छुड़ानेहारा, (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखों की प्राप्ति करानेहारा है, उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाले, सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्य के दाता, (देवस्य) कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय करानेहारे परमात्मा का, जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ ग्रहण और धारण करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करनेहारा, पवित्र शुद्धस्वरूप है, (तत्); उसको हम लोग (धीमहि) धारण करें, (यः) यह जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण–कर्म–स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे। (वेदारम्भ संस्कार–संस्कार विधिः) स्वामी दयानन्द सरस्वती संस्कार विधिः में गायत्री मन्त्र का अर्थ लिखने के

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

☞ *पृष्ठ 03 का शेष*

एक ही रास्ता

तो बहुत विलम्ब हो गया।" बूढ़े भक्त ने चिल्लाकर कहा, "यह तुम बार–बार मेरे ही पास क्यों आते हो? इतना बढ़ा संसार है, किसी दूसरे को पकड़कर ले जाओ। क्या मैं ही स्वर्ग जाने के लिए रह गया हूँ?" नारद की आँखें खुल गईं। दु:ख से बोले, "भगवान् ठीक कहते थे, उन्हें कोई नहीं चाहता।"

यह है भक्तों की दशा! अरे सुनो! धोखे में पड़ा है संसार, व्यापार करता है, भक्ति करना नहीं चाहता। चहुँ ओर अशान्ति की धधकती हुई ज्वालाएँ जल रही हैं। इनसे बाहर निकलने की इच्छा नहीं उसको, केवल उन वस्तुओं की कामना है जो नष्ट होनेवाली हैं। निश्चय ही यह वह भक्ति नहीं, जिसकी चर्चा 'वरेण्यम्' में की गई है। यह तो बिल्कुल व्यापार है। आज लोग कहते हैं, "इतने घण्टे जाप किया, इसके बदले में हमें क्या मिलेगा?" कुछ नहीं मिलेगा। याद रक्खो! यह जाप नहीं, व्यापार है।

महाराज युधिष्ठिर और उनके भाई अज्ञातवास में दु:ख भोग रहे थे। जंगलों में मारे–मारे फिरते थे। एक दिन द्रोपदी ने युधिष्ठिर से कहा, "महाराज! आप इतने बड़े भक्त हैं, ईश्वर में इतनी श्रद्धा रखते हैं, उनसे प्रार्थना क्यों नहीं करते कि इन कष्टों को दूर कर दें?" युधिष्ठिर बोले, "द्रौपदी! मैं ईश्वर से प्यार करता हूँ तथा भक्ति करता हूँ तो व्यापार के लिए नहीं, कुछ माँगने के लिए नहीं, केवल इसलिए करता हूँ कि इस भक्ति से मुझे संतोष मिलता है। सामने वह सुन्दर पहाड़ है, उसके वे झूमते हुए वृक्ष, उजली–उजली बर्फ़, बर्फ़ से होकर आता हुआ, ऊपर से गिरकर बहता हुआ पानी – इसे देखने से सुख मिलता है, आँखों को संतोष होता है। इससे कभी कोई कुछ माँगता नहीं है। इस प्रकार मैं भी ईश्वर की भक्ति करता हूँ।"

शेष अगले अंक में....

☞ *पृष्ठ 04 का शेष*

वेद एवं वैदिक शास्त्रों में ...

हैं तो हमें दिखलाइये। पण्डितों ने कहा, वेद सिर्फ ब्राह्मण ही पढ़ सकता है, ब्राह्मणी भी नहीं। तब आप इसे कैसे पढ़ सकेंगे? तब बुद्ध बोले कि मैं ऐसे वेद को नहीं मानता, जो ब्राह्मणों के चंगुल में पड़कर अन्याय अत्याचार का बढ़वा दे रहा हो। इसके पश्चात् वे एक नया पंथ बना लिये।

वेद विरुद्ध सती प्रथा भी इन्हीं ब्राह्मणों ने चलायी थी। स्वामी के देहान्त के बाद उसकी विधवा पत्नी को पति के साथ स्वर्ग जाने के बहाने चिता की अग्नि में झोंक दिया जाता था, और ऊपर से खूब ढाक ढोल बजाया जाता था, ताकि जलने वाली विधवा की पुकार कोई सुनने व पावे। इस निर्दयी शास्त्र–विरोधी कुप्रथा को रोकने के लिये राजा राम मोहन राय ने आन्दोलन आरंभ कर दिया, जिसके प्रभाव से लॉर्ड विलियम बैंटिक ने सन् 1829 ई. में सतीदाह निवारण कानून पास कर दिया।

विधवा को इसलिये जला देते थे ताकि वह स्वामी की सम्पत्ति की अधिकारी न बन सके। आश्चर्य की बात तो यह है कि भारत में 5 वर्ष से भी कम की शादी कर दी जाती थी और वही फिर शीघ्र विधवा बन जाती थी और हत्यारे माता–पिता उस बच्ची के साथ विधवाओं का जैसा क्रूरता व्यवहार शुरू कर देते थे। उन स्वार्थी ब्राह्मणों ने छोटी बच्चियों का ही विवाह करना धर्म बतला दिया था।

अत: उन्होंने ही देश में बाल विवाह प्रचलित करके विधवाओं की संख्या को बढ़ाया है। इस महापाप के भागी यही लोग हैं, लेकिन धन्य है ऋषि दयानन्द और आर्य समाज को, जिनके अनथक परिश्रम से बालविवाहों का प्रचार अब कम हो गया है। इन्होंने भागवत के रासलीला के आगे गीता का ज्ञान कराने से परे रखा।

**मु.पो. मुरारई,
जिला–वीरभूम (प. बंगाल) 731219
मो. 8158078011**

Thus Spoke Swami Dayanand

- Let him (i.e., the seeker after Salvation) be friends with the happy, kind to those who are in pain and distress, love those who are good and virtuous, but neither love nor hate those who are wicked.
- In this world there are five kinds of Klesha (pain):—

  (i) Ignorance (ii) Asmitá is to regard the principle of discernment and the soul as one and the same thing. (iii) Raga is the love of pleasure. (iv) Dvesha is aversion to pain. (v) Abhinivesha is the fear of death. All living beings have continually the desire to live forever and do not wish to die.
- Let every man free himself from these five kinds of Kleshas by means of the practice of yoga and the acquisition of spiritual knowledge, the realization of God, and enjoy the supreme bliss of Emancipation.
- It is a good thing too that the soul cannot remember its past, otherwise there would have been no happiness for it. It would have died of sheer pain and mental anguish brought on by brooding over the terrible sufferings and sorrows of its past lives.
- God can be just only when He gives the soul pleasure or pain according to its good or evil deeds done in its previous lives.
- God always desires justice and acts justly, therefore it is that he is Great and worthy of our homage and adoration.
- God never does anything that is unjust. He, therefore, fears none.
- The present birth of the soul is in accordance with its deeds—sinful or virtuous—in the past, whilst the future will be determined by its present and past modes of life— righteous or unrighteous.
- When sin predominates over virtue in a man, his soul goes into the bodies of lower animals and the like, when virtue predominates over sin in a soul, it is born as a good and learned person. When sin and virtue are equal, the soul is born as an ordinary man.
- It is only the soul that obeys the Will of God, follows the highest virtue, associates with the good and the great practises of yoga and employs all the aforesaid means, that obtains emancipation.
- The soul enjoys the bliss of emancipation through God in the same way as it enjoys the worldly pleasures through the body.
- Being altogether pure, the soul acquires perfect knowledge of all hidden things in the state of Emancipation. This extreme bliss alone is called Heaven (Swarga), while the pursuit of wordly desires and consequent pain and suffering are called Hell (Naraka).
- Swarga literally means happiness. The ordinary happiness is called worldly happiness. Whilst the extreme happiness born of the realization of God is called Extraordinary happiness or Heaven (Swarga).
- All men naturally desire to obtain happiness and escape from pain and misery. But as long as they do not practise righteousness and renounce sin, so long they cannot obtain happiness and be freed from pain and suffering; because the effect cannot perish as long as the cause exists.
- Whatsoever act a man sows by virtue of the Sattva,Rajas and Tamas, the same shall he reap.

Compiled by — Satyapriya,
09868426592

(Sourced from the English translation of 'Satyarth Prakash' by Dr. Chiranjiv Bhardwaj and published as 'The Light of Truth' from D.A.V. Publication Division)

महर्षि दयानन्द एक शिक्षाशास्त्री के रूप में

● ओम प्रकाश आर्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती के द्वारा रचित एक छोटी सी पुस्तक है– व्यवहारभानु। इस पुस्तक में महर्षि ने विद्याप्राप्ति के उपाय बताए हैं। विद्या किस–किस प्रकार और किन कर्मों से प्राप्त होती है इसकी विवेचना करते हुए वे लिखते हैं– "चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति। आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति।। महाभाष्य अ. 1 प्र. 1 सू. 1 आ.।" अर्थात् "विद्या चार प्रकार से आती है– आगम, स्वाध्याय, प्रवचन और व्यवहार काल। 'आगमकाल' उसको कहते हैं कि जिससे मनुष्य पढ़ानेवाले से सावधान होकर ध्यान दे के विद्यादि पदार्थ ग्रहण कर सके। 'स्वाध्यायकाल' उसको कहते हैं कि जो पठन समय में आचार्य के मुख से शब्द, अर्थ और सम्बन्धों की बातें प्रकाशित हों उनको एकान्त में स्वस्थचित्त होकर पूर्वापर विचार के ठीक–ठाक हृदय में दृढ़ कर सके। 'प्रवचनकाल' उसको कहते हैं कि जिससे दूसरे को प्रीति से विद्याओं को पढ़ा सकना। 'व्यवहारकाल' उसको कहते हैं कि जब अपने आत्मा में सत्यविद्या होती है तब यह करना यह न करना, वही ठीक–ठीक सिद्ध हो के वैसा ही आचरण करना हो सके, ये चार प्रयोजन हैं।" इनकी व्याख्या निम्नवत् है–

1. आगमकाल– विद्या प्राप्त होती है आचार्य या अध्यापक से। विद्या प्राप्त करता है विद्यार्थी। विद्याप्राप्ति का स्थान है गुरुकुल या विद्यालय। अध्यापक जो कुछ पढ़ाता है विद्यार्थी को चाहिए कि वह सावधान होकर उसे ग्रहण करे, उस पर ध्यान दे। यदि विद्यार्थी विद्याग्रहण के लिए सावधान नहीं है, ध्यान नहीं देता है तो वह विद्या प्राप्त नहीं कर सकता। आगम का पदार्थ है– आ+गम। आ का अर्थ है पर्यन्त या सम्पूर्ण। गम का अर्थ है जानना या सीखना। इस प्रकार आगम का अर्थ हुआ सम्यक् रूपेण जानना या सीखना। प्रायः देखा जाता है कि कक्षा में अध्यापक पढ़ा रहा होता है और विद्यार्थी इधर–उधर देखते हैं, बातें करते हैं, दूसरा कोई काम करने लग जाते हैं, ऐसी स्थिति में अध्यापक के द्वारा दिया गया सारा ज्ञान व्यर्थ हो जाता है। ऐसा विद्यार्थी सदैव पीछे रहता है, उसे विषयवस्तु समझ में नहीं आती। इसके विपरीत जो विद्यार्थी सावधान होकर, ध्यान देकर अध्यापक की प्रत्येक बात को रुचि के साथ सुनता है, उसे सारे विषय–बिन्दु स्पष्ट हो जाते हैं। वह कक्षा में सबसे आगे रहता है। ऐसे ही विद्यार्थी विद्या प्राप्त करके जीवन में आगे बढ़ते हैं। और महती–से–महती सफलता प्राप्त करते हैं, विद्वान् बनते हैं, महान बनते हैं। एक बार कक्षा में पढ़ा रहा था। प्रधानाचार्य निरीक्षण करने निकले थे। उनको आते–जाते हुए न तो बच्चों ने देखा और न ही मैंने। बाद में जब कक्षा छोड़कर चला गया तो किसी ने बताया कि प्रधानाचार्य कक्षा का निरीक्षण कर रहे थे। यह होता है अध्ययन और अध्यापनकाल के दौरान सावधानी और ध्यान देने की बात। कभी–कभी ध्यान और सावधानी के अभाव में विद्यार्थी पढ़ाए हुए पाठ को भी कह देते हैं कि यह तो पढ़ाया ही नहीं गया है। ध्यान ही विषयवस्तु को मन–मस्तिष्क में उतारता है, ग्राह्य बनाता है। इसी कारण महर्षि दयानन्द ने अध्ययन–अध्यापन का स्थान उपद्रवरहित होना बताया है। ऐसा होने से ध्यान केन्द्रित होता है और मन इधर–उधर भटकता नहीं है। अध्यापक का विद्यार्थियों को बार–बार टोकना इस बात का द्योतक है कि वे सावधान होकर और ध्यान देकर पढ़ाए जाने वाले विषय को ध्यान से सुनें, समझें और हृदयंगम करें।

2. स्वाध्यायकाल– विद्यार्थी ने अध्यापक के द्वारा शब्द, अर्थ और सम्बन्ध की जो बातें सुनी हैं उस शब्द, अर्थ और सम्बन्ध को अपने हृदय में ठीक–ठाक दृढ़ करने के लिए एकान्त में स्वस्थचित्त से विचार करना चाहिए। यही स्वाध्यायकाल है। इसका शाब्दिक अर्थ है– स्व+अध्याय। स्वयं में अध्ययन करना। स्वयं में विचार–विमर्श करना। ऐसा करने से सारा ज्ञान विद्यार्थी की स्थायी निधि बन जाता है। अध्यापक के मुख से निकलता है शब्द। विद्यार्थी को उस शब्द का अर्थ विदित होना चाहिए तभी वह उसे समझ सकेगा। जब अर्थ समझ में आ जाए तब यह विचार करना चाहिए कि उसका जीवन–जगत् के साथ क्या सम्बन्ध है। महाभारत के इस उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी। गुरु ने विद्यार्थियों को पढ़ाया कि सदा सत्य बोलो। सभी ने इस वाक्य को ज्यों का त्यों दुहराकर गुरुजी को सुना दिया, केवल युधिष्ठिर नहीं सुना सके। जब गुरु ने उसने पूछा कि युधिष्ठिर तुम्हें पाठ अभी तक याद नहीं हुआ, सबने तो सुना दिया, तब युधिष्ठिर ने कहा कि गुरुजी यह पाठ कठिन है। जब तक सत्य को जीवन में उतार नहीं लिया जाएगा, तब तक वह कैसे याद होगा। गुरुजी ने कहा कि युधिष्ठिर केवल तुम्हीं ने पाठ को समझा है। वास्तव में यही स्वाध्याय है। पहले शब्दों को सुनना, फिर उनके अर्थ जानना और जीवन के साथ उनका उपयोग करना। यही विद्या की प्राप्ति है। इसी से अमरता की प्राप्ति होती है। आजकल बच्चे पाठ को रट तो लेते हैं किन्तु उसका स्वाध्याय नहीं करते। इसके अभाव में शिक्षा जीवन से जुड़ नहीं पा रही है। वह नौकरी प्राप्ति तक ही सीमित रह गई है। शब्द, अर्थ, सम्बन्ध का समन्वय नहीं है। कमोबेश शब्द, अर्थ मान भी लिया जाए तो सम्बन्ध की उससे दूरी ही दूरी है। इसी कारण शिक्षा से नैतिकता का ह्रास देखा जा रहा है। इसकी आज महती आवश्यकता है। महर्षि दयानन्द का शिक्षा–सम्बन्धी चिन्तन जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। यही विद्याप्राप्ति की सार्थकता है। "विद्ययाऽमृतमश्नुते" का साक्षात उदाहरण है उनका शैक्षिक चिन्तन।

3. प्रवचनकाल– प्रेमपूर्वक विद्याओं का पढ़ाना। पउन–पाठन में प्रीति का महत्वपूर्ण स्थान है। अध्यापक के द्वारा समर्पण भाव से विद्यार्थियों को विद्या पढ़ाना और विद्यार्थियों के द्वारा श्रद्धा के साथ विद्या को ग्रहण करना। श्रद्धया लभते ज्ञानम् अर्थात् ज्ञान श्रद्धा से प्राप्त होता है। प्रेम के साथ विद्या का पढ़ाना ही प्रवचनकाल है। अध्यापक और विद्यार्थियों के मध्य मधुर सम्बन्ध होना चाहिए तभी विद्या का प्रकाश संभव हो सकता है। आजकल अध्यापक और विद्यार्थियों के मध्य यह मधुरता ह्रास को प्राप्त हो रही है। इसी कारण अनेक प्रकार की घटनाएँ भी देखने–सुनने को मिल रही हैं। कहीं अध्यापक ने बच्चे को इतना पीट दिया कि बच्चा ही चोटिल हो गया, कहीं विद्यार्थियों ने अध्यापक के साथ ऐसा किया। पठन–पाठन के लिए मधुर वातावरण होना आवश्यक है। एक बार कक्षा 6 में एक पाठ पढ़ा रहा था– छोटा जादूगर। उस पाठ में माँ के लिए बेटे का मेहनत से पैसे कमाकर इलाज कराने का बड़ा मार्मिक वर्णन था। इस पाठ को पढ़ते–पढ़ते एक छात्रा अश्रुपात करने लगी। जब मैंने उससे रोने का कारण पूछा तो उसने बताया कि उसे माँ की याद आ रही है। उस पाठ को पढ़कर बालिका का हृदय द्रवित हो गया। यह है मधुर वातावरण का प्रभाव और अध्यापक–विद्यार्थी के मध्य मधुर भाव। विद्या ग्रहण कराते और करते समय कटुता का सर्वथा अभाव होना चाहिए। यह बहुत बड़ी बाधा है। इसलिए ऐसा वातावरण हो जहाँ अध्यापक और विद्यार्थी प्रेमपूर्वक विद्या पढ़–पढ़ा सकें।

4. व्यवहारकाल– विद्या ग्रहण करके उसे व्यवहार में लाना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। यदि विद्या आचरण में नहीं लाई गई तो वह निरर्थक है। आज की शिक्षा की सबसे बड़ी बिडंबना यही है कि वह व्यवहार में सिद्ध नहीं हो रही है। सारी शिक्षाएँ, सारे उपदेश, सारी नैतिकता पुस्तकों तक ही सीमित रह गई है। बच्चे पढ़ तो लेते हैं किन्तु उस पठन का संस्कार अपने व्यवहार में नहीं लाते हैं। शिक्षा वही है जो आचरण में बदलाव ला सके। विद्यार्थियों को सदाचारी बना सके। जब ज्ञान के द्वारा सत्यासत्य का भान हो जाता है, उचित–अनुचित का परिज्ञान हो जाता है, करणीय–अकरणीय का निश्चय हो जाता है तब उसको वैसा ही आचरण में सिद्ध करना चाहिए। बस विद्या ग्रहण करना सफल हो गया। सारी नैतिकशिक्षा की किताबें पढ़ डाला, रामायण–महाभारत–गीता पढ़ डाला, किन्तु यदि उससे प्राप्त शिक्षा को आचरण में नहीं लाया गया तो वह व्यर्थ है। अगर शिक्षा और आचरण का सामंजस्य हो जाए तो समाज, राष्ट्र, विश्व में स्वर्गिक वातावरण उत्पन्न हो जाए और सर्वत्र सुख, शांति और आनन्द की वृष्टि हो। सारी कटुताएँ, क्रूरताएँ, विषमताएँ, कल्मषताएँ समाप्त हो जाएँ। पूरा विश्व एक परिवार जैसा बन जाए। विद्या और आचरण का अटूट सम्बन्ध होना चाहिए। इनके मध्य दूरी नहीं होनी चाहिए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने व्यवहारभानु पुस्तक में विद्याप्राप्ति के अन्य चार कर्म बतलाए हैं– 1. श्रवण 2. मनन 3. निदिध्यासन 4. साक्षात्कार। वे लिखते हैं– 'श्रवण' उसको कहते हैं कि आत्मा मन के और मन श्रोत इन्द्रियों के साथ यथावत् युक्त करके अध्यापक के मुख से जो–जो अर्थ और सम्बन्ध प्रकाश करने हारे शब्द निकालें उनको श्रोत से मन और मन से आत्मा में एकत्र करते जाना। 'मंनन' उसको कहते हैं कि जो–जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध आत्मा में एकत्र हुए हैं उनका एकान्त में स्वस्थचित्त होकर विचार करना कि कौन शब्द किस अर्थ के और कौन अर्थ किस शब्द के साथ सम्बन्ध अर्थात् मेल रखता और इनके मेल में किस प्रयोजन की सिद्धि और उल्टे होने में क्या–क्या

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

☞ *पृष्ठ 06 का शेष*

गायत्री मन्त्र विवेचन

बाद यह भी लिखते हैं कि हमें जगदीश्वर की ही स्तुति प्रार्थनोपासना करनी चाहिए क्योंकि जगदीश्वर के तुल्य या उससे अधिक कोई नहीं है। अतः परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी को अपना इष्ट देव या उपास्य नहीं मानना या समझना चाहिए।

वेद भाष्यों में गायत्री मन्त्र का अर्थ

(क) उस जगदीश्वर की कैसी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश इस मन्त्र में किया है–

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

–(यजुर्वेद 3/35)

ऋषिः–विश्वामित्रः। देवता–सविता।
छन्दः–निचृद्गायत्री। स्वरः–षड्जः।

सान्वय पदार्थ–

(वयं) – हम लोग
सवितुः – सब जगत् के उत्पन्न करनेवाले
देवस्य – प्रकाशमय शुद्ध वा सुख देनेवाले
(परमेश्वरस्य) – परमेश्वर का
(यद्) – जो
वरेण्यं – अतिश्रेष्ठ
भर्गः – पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करनेवाला
(स्वरूपमस्ति) – तेजःस्वरूप है
तद् धीमहि – उसको धारण करें और
यः – जो
(सविता देवः) – अन्तर्यामी सब दुखों को देनेवाला
(अन्तर्यामी परमेश्वरः सः) – वह परमेश्वर (अपनी करुणा करके)
नः (अस्माकं) – हम लोगों की
धियः – बुद्धियों को
प्रचोद्यात (प्रेरयेत्) – उत्तम–उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में प्रेरणा करें।

भावार्थ– मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि सब जगत के उत्पन्न करनेवाले, सबसे उत्तम, सब दोषों के नाश करनेवाले तथा अत्यन्त शुद्ध परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नित्य करें। किस प्रयोजन के लिए (जिससे) वह स्तुति, धारण, प्रार्थना वा उपासना किया हुआ (परमेश्वर) हम लोगों को सभी खोटे–खोटे गुण, कर्म और स्वभावों से अलग–अलग करके अच्छे–अच्छे गुण, कर्म और स्वभावों में प्रवृत्त करें (इसलिए) और प्रार्थना का मुख्य सिद्धान्त यही है कि जैसी प्रार्थना करनी चाहिए वैसा ही पुरुषार्थ से कर्म का आचरण करना चाहिए।। 35।।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

–(यजुर्वेद 22/9)

ऋषिः–विश्वामित्रः। देवता–सविता।
छन्दः–निचृद्गायत्री। स्वरः–षड्जः।

हे मनुष्याः) – हे मनुष्यो!
सवितुः – समस्त संसार उत्पन्न करनेवाले
देवस्य – स्वप्रकाशस्वरूप, सबके चाहने योग्य, सभी सुखों के देनेवाले
(यद्) – जिस
वरेण्यं – स्वीकार करने योग्य अति उत्तम
भर्गः – समस्त दोषों के दाह करनेवाले तेजोमय शुद्धस्वरूप को
(वयं) – हम लोग
धीमहि – धारण करते हैं
तत् एव (यूयं धरत) – उसको ही (तुम लोग धारण करो)
यो नः (सर्वेषां)– जो परमात्मा हम (सब लोगों) की
धियः – बुद्धियों को
प्रचोदयात् – प्रेरे अर्थात् उनको अच्छे–अच्छे कामों में लगावे
(सोऽन्तर्यामी) – वह अन्तर्यामी परमात्मा
(सर्वैरूपासनीयः) – सबके उपासना करने के योग्य है।

भावार्थ– सब मनुष्यों को चाहिए कि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध–बुद्ध–मुक्त स्वभाव सब के अन्तर्यामी परमात्मा को छोड़ के उसकी जगह में अन्य किसी पदार्थ को उपासना का स्थापन कभी न करें। किस प्रयोजन के लिये कि– जो हम लोगों से उपासना किया हुआ (उपासित) परमात्मा हमारी बुद्धियों को अधर्म के आचरण से छुड़ाकर धर्म के आचरण में प्रवृत्त करे। जिससे शुद्ध हुए हम लोग उस परमात्मा को प्राप्त होकर इस लोक और परलोक के सुखों को भोगें इस प्रयोजन के लिये ।। 9।।

(ग) इस मन्त्र में ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिए इस विषय को कहा है–

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

–(यजुर्वेद 30/2)

ऋषिः–नारायण। देवता–सविता।
छन्दः–निचृद्गायत्री। स्वरः–षड्जः।

सान्वय पदार्थ–

(हे मनुष्याः) – हे मनुष्यो!
यः – जो
नः – हमारी
धियः – बुद्धि या कर्मों को
प्रचोदयात् – प्रेरणा करे
(यस्य) – उस
सवितुः – समग्र जगत् के उत्पादक, सब ऐश्वर्य तथा
देवस्य – सुख के देने वाले ईश्वर के
(यद्) – जो
वरेण्यं – ग्रहण करने योग्य अत्युत्तम
भर्गः – जिससे दुःखों का नाश हो उस शुद्ध स्वरूप को
(यथा) – जैसे
(वयं) – हम लोग
धीमहि – धारण करें
(तथा) – वैसे
तद् – उस ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को
(यूयमपि) – तुम लोग भी
(दधेध्वम्) – धारण करो।

भावार्थ– इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर जीवो को अशुभाचरण से अलग कर शुभ आचरण में प्रवृत्त करता है वैसे राजा भी करे। जैसे परमेश्वर में पितृभाव करते अर्थात् उसको पिता मानते हैं वैसे राजा को भी मानें। जैसे परमेश्वर जीवों में पुत्रभाव का आचरण करता है वैसे राजा भी प्रजाओं में पुत्रवत् वर्ते (व्यवहार करे)। जैसे परमेश्वर सब दोष, क्लेश और अन्यायों से निवृत है वैसे राजा भी होवे।। 2।।

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।।

–(यजुर्वेद 36/3)

ऋषिः–विश्वामित्र। देवता–सविता।
छन्दः–पूर्वस्य दैवी बृहती छन्द।
तत्सवितुरित्युत्तरस्य निचृद्गायत्री।
स्वरः–मध्यमषड्जौ।

सान्वय पदार्थ–

(हे मनुष्याः) – हे मनुष्यो!
(यथा) – जैसे
(वयं) – हम लोग
भूः – कर्मकाण्ड की विद्या
स्वः – [और] ज्ञानकाण्ड की विद्या को
भुवः – उपासना काण्ड की विद्या
(अधीत्य) – [संग्रहपूर्वक] पढ़के
यः – जो
नः – हमारी
धियः – धारणावती बुद्धियों को
प्रचोदयात् – प्रेरणा करे
(तस्य) – उस
देवस्य – कामना के योग्य
सवितुः – समस्त ऐश्वर्य के देनेवाले परमेश्वर के
तत् – उस (इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष)
वरेण्यं – स्वीकार करने योग्य
भर्गः – सब दुःखों के नाशक तेजःस्वरूप का
धीमहि – ध्यान करें
(तथा) – वैसे
(यूयमपि) – तुम लोग भी
(एतद्) – इसका
(ध्यायत) – ध्यान करो

भावार्थ– इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान सम्बन्धिनी विद्याओं का सम्यक् ग्रहण कर सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं तथा अधर्म, अनैश्वर्य और दुःखरूप मलों को छुड़ा के धर्म, ऐश्वर्य और सुखों को प्राप्त होते हैं उनको अन्तर्यामी जगदीश्वर स्वयं ही धर्म के अनुष्ठान और अधर्म का त्याग कराने को सदैव चाहता है।। 3।।

(ङ) इस मन्त्र में परमात्मा के विषय को कहते हैं–

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

–(यजुर्वेद 3/62/10)

ऋषिः–विश्वामित्र। देवता–सविता।
छन्दः–निचृद्गायत्री। स्वरः–षड्जः।

सान्वय पदार्थ–

(हे मनुष्याः) – हे मनुष्यो!
(सर्वे) – सब
(वयं) – हम लोग
यः – जो
नः – हम लोगों की
धियः – बुद्धियों को
प्रचोदयात् – उत्तम गुण, कर्म और स्वभावों में प्रेरित करें
(तस्य) – उस
सवितुः – संपूर्ण संसार के उत्पन्न करनेवाले और संपूर्ण ऐश्वर्य से युक्त
देवस्य – संपूर्ण ऐश्वर्य के दाता, प्रकाशमान, सबके प्रकाश करनेवाले, सर्वत्र व्यापक, अन्तर्यामी ईश्वर के
तद् – उस
वरेण्यं – सबसे उत्कृष्ट (उत्तम) प्राप्त होने योग्य
भर्गः – पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करनेवाले प्रभाव को
धीमहि – धारण करें।

भावार्थ– जो मनुष्य सबके साक्षी, पिता के सदृश वर्त्तमान, न्यायेश, दयालु, शुद्ध, सनातन, सबके आत्माओं के साक्षी परमात्मा की ही स्तुति और प्रार्थना करके उपासना करते हैं, उनको कृपा का समुद्र, परमगुरु=सबसे श्रेष्ठ परमेश्वर दुष्ट आचरण से पृथक करके श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त कर पवित्र तथा पुरुषार्थ युक्त करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कराता है।

अध्यक्ष संस्कृत विभाग
रणवीर रणञ्जय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
अमेठी

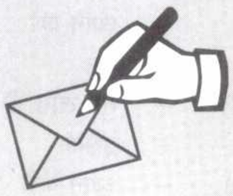

पत्र/कविता

असली और नकली ईश्वर

भारत के लोग नकली माल बनाने में बड़े होशियार हैं नकली करेन्सी नोट, दूध, घी, खोया और नकली दवाईयां भी खूब बन रही हैं जिनसे लोगों की जिदंगी से खिलवाड़ किया जा रहा है। ऐसे लोगों को आजीवन कारावास की सजा का कानून बनना चाहिये। तभी नकली पदार्थ बनाने को रोका जा सकता है। इसी प्रकार ईश्वर भी नकली बना दिये गये हैं।

चार वेद सबसे पुराने ग्रंथ हैं जिन्हें ईश्वरीय ज्ञान माना जाता है क्योंकि मनुष्यों में स्वाभाविक ज्ञान नहीं होता। इसलिए परमात्मा को आदि गुरु माना जाता है। वेद में कहा गया है 'सः गुरूणामपि गुरु'। यजुर्वेद 32.3 में स्पष्ट कहा गया है 'न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः' अर्थात् उस परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं है। चारों वेदों में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है जिसमें उसकी किसी प्रकार की मूर्ति बनाकर पूजा करने को कहा गया हो। इसी विषय पर काशी शास्त्रार्थ में महर्षि दयानन्द को वहां का कोई भी पण्डित वेदों में से मूर्ति पूजा का कोई मन्त्र दिखा नहीं सका। इन लोगों ने ऋषि मुनियों के नाम से कई झूठे ग्रंथ 18 पुराण तथा गुरुगीता इत्यादि ग्रंथ लिख दिये इनमें परस्पर विरोधी बातें भी लिख दीं। महामुनि वेद व्यास लिखित महाभारत तथा अन्य सभी ग्रन्थों में अपनी तरफ से श्लोक प्रक्षेप कर दिये और 18 पुराण भी उनके द्वारा लिखे बताये जा रहे हैं जिनमें एक भविष्य पुराण भी है उसमें भविष्य की कुछ घटनाओं का वर्णन किया गया है। इस बारे में अधिक नहीं कहते हुये यह बताना चाहता हूं कि एक श्लोक में यह कहा है 'रविवारे च सन्डे फाल्गुणा च फरवरी' अर्थात् रविवार को सण्डे और फागुण मास को फरवरी कहा जायेगा। प्रश्न यह है कि क्या श्री वेदव्यास जो लगभग 5100 वर्ष पहले हुए अंग्रेज़ी भाषा भी जानते थे? परन्तु इस पुराण में आर्य समाज का वर्णन नहीं किया।

केवल चार वेद ही मिलावट से बचे हैं क्योंकि श्लोकों की बजाये यह मंत्रों में हैं। अन्य लगभग सभी ग्रंथों में वेद विरुद्ध बातें मिला दी गई हैं क्योंकि उस समय प्रिन्टिंग प्रैस इत्यादि नहीं थे और हाथ से ही किताबें लिखी जाती थीं। हनुमान चार वेद पढ़े वानर जाति से थे परन्तु उन्हें बन्दर बना दिया गया। वेदों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश दुर्गा, सरस्वती, इत्यादि ईश्वर के कई नाम आये हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में ईश्वर के 100 नामों का वर्णन किया है जिसमें मुख्य नाम ओ३म् लिखा है। पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश शिव, दुर्गा काली इत्यादि के इतिहास का भी वर्णन है जो पहले कभी हुए होंगे परन्तु अब कहीं नज़र नहीं आते। इनकी अजीब ढंग की मूर्तियाँ तथा चित्र बनाये जाते हैं जो सृष्टि नियम के अनुसार नहीं हैं। इसलिये यह काल्पनिक ही लगते हैं। आजकल कई लोग अपने आप को ईश्वर कहते हैं परन्तु ईश्वर का मुख्य कार्य सृष्टि की रचना करना, पालन करना तथा संहार करना है जो इनके बस की बात नहीं इसलिये यह सब नकली हैं।

आर्य समाज को किसी से डरना नहीं चाहिये और इन नकली ईश्वरों की पोल खोलनी चाहिये। ईश्वर तो एक ही है उस जैसा महान पुरुष कोई नहीं है। श्रीराम, श्रीकृष्ण हमारे महापुरुष थे जो स्वयं ईश्वर भक्ति करते थे। उनको ईश्वर मान कर उनकी पूजा करना ठीक नहीं है। आज पाखंड और अन्ध विश्वास खूब बढ़ रहा है। अगर आर्य समाज इसका खंडन नहीं करेगा तो यह भी राजा राम मोहन राम के ब्रह्म समाज की तरह शीघ्र ही काल का ग्रास बन जायेगा। इसलिये आर्य समाज जागरूक होकर वेद का प्रचार करे और अपने संगठन को शक्तिशाली बनाये। (महर्षि दयानन्द के आदेशानुसार सब आर्य अपना धर्म वैदिक ही लिखें लिखायें।

अश्विनी कुमार पाठक, सी 233
दूरभाष 26871636
नानक पुरा नई दिल्ली–21

****

हमारी यह गो भक्ति कैसी

जगह–जगह गौ वंश से लदे ट्रक पकड़े जाते हैं। उनमें गोवंश बुरी तरह ठूँस कर भरा होता है, जिससे उनके रंभाने की आवाज़ बाहर नहीं आए। निकालने पर कुछ मरे मिलती हैं। कभी–कभी बजरंग दल द्वारा पकड़े जाते हैं तो कभी पलटने पर मालूम पड़ते हैं। व्यापारी वर्ग उन्हें बुरी तरह तड़पाकर मार रहा है, ऐसी गो भक्ति को देखकर दिल दुखता है व सोचने को मजबूर करता है।

जगदीश प्रसाद माहेश्वरी
E–3/789 शहीद नगर, आगरा 282001

****

पुण्य स्मरण : महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

खुशहाल बने आनन्द स्वामी,
'माँ गायत्री' का ध्यान किया,
संसार के 'दो रास्ते' पर चलकर,
'तत्त्वज्ञान' को खोज लिया।
निज जीवन की पीड़ा बिसराई,
जग को हंसने का मंत्र दिया,
'घोर घने जंगल में' भटके,
जगको नवजीवन का गुरुमंत्र दिया।।
हे ऋषिवर! के प्रबल पुजारी,
नमन हमारा हो तुमको,
जग में फहरे शुचि ओम् ध्वजा,
करबद्ध प्रणाम करें तुमको।
जग को जीवन भर रहे हंसाते,
वेदकथा फैलाई है,
श्रद्धा सुमन हम अर्पण करते,
शुचि वेद की ज्योति जलाई।।

हरि ओ३म शास्त्री
डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल
सैक्टर–14 फरीदाबाद

वैदिक विरासत

ईश्वरीय वरदान है, वैदिक विरासत।
सूर्य सा तेजस्वी है, सेवा सराफत।।

सत्य और न्यास से, परोपकार करना।
है मेरे आर्यत्व की, भरपूर ताकत।।

हर मनुष्य संतान के, मस्तिष्क में है।
ज्ञान और विज्ञान के, अमृत की चाहत।।

राष्ट्र के सम्मान को समृद्ध करना।
है निरन्तर, एकता पूर्ण इबादत।।

विश्व शान्ति का अमर सन्देश देकर।
बांटती है वीरता, सुख चैन राहत।।

सभ्यता का सात्विक, सम्मान करना।
यज्ञमय जीवन की, सदा उज्ज्वल सदाकत।।

राष्ट्र हित के सब, अमर सेनानियों का।
आत्मिक सत्कार, करता प्यारा भारत।।

महर्षि तेरी दया, आनन्द दायक।
तयाग और तप पर खड़ी तेरी इमारत।।

हर जमाने के, लिये है मार्ग दर्शक।
वेद के सत्यार्थ की, तेरी नफासत।।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के
भूतपूर्व सहमंत्री
स्व. हरवंश लाल कपूर की डायरी से

☞ *पृष्ठ 08 का शेष*

महर्षि दयानन्द एक....

हानि होती है। 'निदिध्यासन' उसको कहते हैं कि जो–जो अर्थ और सम्बन्ध सुने–विचारे हैं वे ठीक–ठीक हैं वा नहीं? इस बात की विशेष परीक्षा करके दृढ़ निश्चय करना और साक्षात्कार' उसको कहते हैं कि जिन अर्थों के शब्द और सम्बन्ध सुने, विचारे और निश्चय किए हैं उनको यथावत् ज्ञान और क्रिया से प्रत्यक्ष करके व्यवहारों की सिद्धि से अपना और पराया उपकार करना आदि विद्या की प्राप्ति के साधन हैं।" इनकी व्याख्या निम्नवत् है–

1. **श्रवण–** विद्या प्राप्ति के लिए श्रवण का बड़ा महत्व है। अध्यापक के मुख से जो अर्थ और सम्बन्ध को प्रकाश करने वाले शब्द निकलते हैं वे विद्याथी के श्रवणों में जाते हैं, श्रवणों से मन में, मन से आत्मा में संगृहीत होते हैं। इस प्रकार कान, मन और आत्मा के माध्यम से विद्या को ग्रहण किया जाता है। अध्यापक के मुख से निकले शब्द को आत्मा तक पहुँचाना है। जो विद्यार्थी जितने ही ध्यान से अध्यापक की बात को सुनता है उसके मन के द्वारा उतना ही आत्मा में वह विषय संगृहीत होता है। विडंबना यह है कि विद्यार्थी विषय–बिन्दु को ध्यान से सुनते ही नहीं। ध्यान से सुन लेने पर याद करने की आधी समस्या नहीं समाप्त हो जाए। इसके लिए विद्यालय या गुरुकुल शोर–शराबे से रहित प्राकृतिक स्थल पर स्थापित होना चाहिए। बहुत से विद्यार्थी ऐसे होते हैं जिन्हें अध्यापक के मुख से निकले शब्द तुरन्त गृहीत हो जाते हैं, बहुतों को याद ही नहीं रहता। इसके पीछे कारण है ध्यान से न सुनने की। ध्यान से सुना जाए, मन में ग्रहण किया जाए और उसे आत्मा में उतार लिया जाए– यह विद्याप्राप्ति का सर्वोत्तम कर्म है।

2. **मनन–** यह बहुत महत्वपूर्ण विषय–बिन्दु है। विद्यार्थी गृहीत विषय–बिन्दु का मनन नहीं करते। इसी कारण वह विषय शीघ्र विस्मृत हो जाता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती का शिक्षा विषयक दृष्टिकोण कितना स्पष्ट है। वे कहते हैं कि अध्यापक के मुख से जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध आत्मा में एकत्र हुआ है उसे एकान्त में जाकर स्वस्थचित्त से मनन करना चाहिए कि कौन अर्थ किस शब्द के साथ सम्बन्ध रखता है, उनके मेल में किस प्रयोजन की सिद्धि होगी और उल्टे होने में क्या हानि होगी। मनन करना ही विषय को स्थायी रूप से ग्रहण करना है। मनन न किया हुआ विषय शीघ्र विस्मृत हो जाता है। बहुत से विषय–बिन्दु ऐसे होते हैं जो याद तो कर लिए जाते हैं। किन्तु विद्यार्थी को उनके अर्थ और सम्बन्ध का पता नहीं होता। ऐसा याद करना केवल बोझ है। मनन किए हुए विषय को आसानी से दूसरों तक पहुँचाया जा सकता है। इसी को 'कांसेप्ट क्लीयर होना' कहते हैं। कांसेप्ट क्लीयर मनन से ही संभव है। ऐसा करते समय बहुत सी शंकाएँ आ सकती हैं, बहुत से सन्देह हो सकते हैं जिन्हें अध्यापक की सहायता से दूर किए जाने चाहिए। वेद–शास्त्रों के मंत्रादि के मनन पर तो बहुत बल दिया गया है। भगवान मनु ने कहा कि प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठकर वेद के तत्वार्थ का चिन्तन–मनन करना चाहिए। ऐसा करनेवाला परम कल्याण को प्राप्त करता है।

3. **निदिध्यासन–** अध्यापक के मुख से जो अर्थ और सम्बन्ध सुना गया है, विचारा गया है, वह ठीक है या नहीं, इसकी परीक्षा करके दृढ़ निश्चय करना निदिध्यासन कहलाता है। वैसे तो हर अध्यापक विषय को समझकर ही अपने विद्यार्थियों को पढ़ाता है किन्तु यहाँ ऋषि विद्यार्थियों की तर्कणाशक्ति जाग्रत करना चाहते हैं। तर्कणाशक्ति से विद्यार्थी प्रश्न पूछेगा। उस प्रश्न से उसका ज्ञान और गहरा होता जाएगा। प्रश्न करने वाला विद्यार्थी तर्कशील होता है। तर्क से उसका ज्ञान और दृढ़ हो जाता है। महर्षि दयानन्द जब अपने गुरु के पास अध्ययन कर रहे थे, वे अपने गुरु से बहुत तर्क करते थे। इसी कारण गुरुजी उनको 'कालजिह्व' और 'कुलक्कर' की उपाधि से विभूषित करते थे। "कालजिह्व का अर्थ है जिसकी जिह्वा असत्य के खंडन और भ्रांतिजाल के छेदन में काल के समान कार्य करे और कुलक्कर का अर्थ है खूँटा अर्थात् जो खूँटे के समान दृढ़ और अविचलित रहकर विपक्षी को पराभूत कर सके।" यही निदिध्यासन महर्षि दयानन्द के जीवन में अद्भुत क्रान्ति लाया, जिसका प्रमाण उनका अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' है। बच्चों में निदिध्यासन की आदत डालनी चाहिए। इससे अध्यापक में भी सजगता बनी रहेगी और वह अपने विषय को बहुत गहराई से पढ़ाने का प्रयत्न करेगा।

4. **साक्षात्कार–** साक्षात्कार के द्वारा पढ़े, सुने विचारे हुए ज्ञान का क्रिया के साथ प्रत्यक्ष करके अपना और दूसरे का उपकार करना है। साक्षात्कार विषय का क्रियात्मक ज्ञान है। आचरण में उतारने वाला कार्य है। विज्ञान तभी सिद्ध होता है जब उसका प्रयोग होता है। ज्ञान का व्यवहार और क्रिया में प्रयोग करना ही साक्षात्कार है। इस साक्षात्कार से अपना भी कल्याण होता है और पराये का भी। कहते हैं कि कोरा उपदेश नहीं देना चाहिए, क्योंकि लोगों पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता। जब उस उपदेश को करके दिखाया जाता है तो लोग उससे सहज ही प्रभावित हो जाते हैं और उससे शिक्षा भी ग्रहण करते हैं। कहे हुए से किया हुआ अधिक प्रभावोत्पादक होता है। पढ़ाये हुए विषय की तभी सार्थकता है जब उसे ज्ञान और क्रिया से प्रत्यक्ष करके व्यवहार की सिद्धि की जाए। उससे अपना भी कल्याण होगा और दूसरे का भी। आज की शिक्षा मात्र परीक्षा पास करके अच्छे अंक प्राप्त करना रह गई है। क्रिया से उसका कोई संबंध नहीं रहा। इसी कारण मानव में मानवीय गुणों की कमी होती जा रही है। वह स्वार्थी होता जा रहा है और स्वकेन्द्रित। उसे दूसरों से कोई सरोकार नहीं रहता। साक्षात्कार विद्या को सार्थक बनाता है। अभियांत्रिकी का तो सारा सिद्धांत निरर्थक है यदि उसको प्रयोग में न लाया जाए। इसी से जगत् का कल्याण होता है।

पठन–पाठन से जुड़े सभी शिक्षक/शिक्षिकाओं से निवेदन है कि वे इस लेख को अवश्य पढ़ें और महर्षि दयानन्द के शिक्षा–सम्बन्धी मन्तव्य को समझें जिससे उनके द्वारा विद्यार्थियों का कल्याण हो सके। राष्ट्र में नैतिक शिक्षा का प्रचार–प्रसार हो सके। अध्ययन–अध्यापन में सुरुचिपूर्ण वातावरण का निर्माण हो सके।

आर्य समाज रावतभाटा (कोटा)
राजस्थान–323307

• •

आर्य जगत् सम्बंधी घोषणा

(फार्म–4 नियम 8 देखियं)

1. प्रकाशन का स्थान : आर्य समाज कार्यालय, आर्य समाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001

2. प्रकाशन–अवधि : साप्ताहिक

3. मुद्रक का नाम : एस के शर्मा

क्या भारत का नागरिक है? : हाँ

4. मुद्रक का पता : आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001

5. प्रकाशक का नाम : एस के शर्मा

6. क्या भारत का नागरिक है? : हाँ

7. प्रकाशक का पता : आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001

8. सम्पादक का नाम : पूनम सूरी

क्या भारत का नागरिक है? : हाँ

सम्पादक का पता : आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001

उन सभी व्यक्तियों के नाम पते जो समाचार–पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत के हिस्सेदार हों– : आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001

मैं एस के शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 25-26/3/2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

सद्धर्म प्रणेता स्वामी दयानन्द जन्म दिवस समारोह सम्पन्न

डीए.वी. पब्लिक स्कूल झिंगुरदह के प्रांगण में 19वीं सदी के महान समाज सुधारक, अछतोद्धारक, वैदिक ज्ञान के स्रोत, तेजस्वी, कर्मयोगी आय समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती का जन्म दिन पूरे हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। प्रथम चरण में विद्यालय के छात्र–छात्राओं द्वारा प्रभातफेरी निकाली गई जिसका शुभारम्भ विद्यालय के प्राचार्य डॉ. ए.के. मित्र ने ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना मन्त्रों द्वारा अन्य शिक्षकों के साथ किया।

DAV PUBLIC SCH
JHINGURDA

कार्यक्रम के द्वितीय चरण में विद्यालय के मनोरम प्रांगण में त्रिकुण्डीय देव यज्ञ का आयोजन हुआ जिसमें सुगंधा महिला समिति झिंगुरदह की अध्यक्षा श्रीमती निरजा गोमस्ता ने मुख्य यजमान की वेदी पर बैठकर प्रज्ज्वलित अग्नि में अग्निहोत्र किया।

तीसरे चरण में विद्यालय के छात्र–छात्राओं द्वारा स्वामी दयानन्द के जीवन पर आधारित सजीव झांकी प्रस्तुत की गयी।

कार्यक्रम के चौथे व अन्तिम चरण में ऋषि लंगर का विशेष प्रबन्ध विद्यालय प्रबंधन द्वारा किया गया।

आर. आर. बाबा डी.ए.वी. कालेज फॉर गर्ल्ज़ में ''पोस्टर मेकिंग'' प्रतियोगिता का आयोजन

यूजी. सी. द्वारा स्थापित–स्वामी दयानन्द अध्ययन के तत्वावधान में आर.आर. बाबा डी.ए.वी. कालेज फॉर गर्ल्ज में स्वामी दयानन्द अध्ययन केन्द्र के स्वामी दयानन्द जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में ''पोस्टर मेकिंग'' प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इसमें प्रतियोगियों ने कालेज प्रांगण में स्थित 'यज्ञशाला भवन'' को रंखांकित करते हुए विभिन्न आयामों से पोस्टर बनाए।

प्रिंसीपल प्रो. डा. (श्रीमती) अजय सरीन ने स्वामी जी के जन्मोत्सव पर संन्देश लिख कर इस कार्यक्रम का शुभारम्भ किया एवं कालेज के प्राध्यापक वर्ग ने ''ओ३म्'' प्रणवाक्षर लिख कर अपनी समभागिता प्रकट की।

स्वामी जी के महान् वाक्यों के सुन्दर बैनर लगाये गये थे। सब ओर हर्षोल्लास दिखाई दे रहा था।

प्रिंसीपल महोदया ने विद्यार्थियों को स्वामी जी का समाज, विशेष रूप से नारी–शिक्षा, नारी –उत्थान में योगदान का विस्तार पूर्वक परिचय दिया एवं वैदिक संस्कृति से ही भारत की नारी समाज एवं विश्व में किस प्रकार अपना विशेष स्थान बना सकती है, इस की चर्चा की। श्रीमती राज शर्मा ने समस्त उपस्थित जनों का धन्यवाद किया। प्रिंसीपल महोदया ने इस आयोजन के लिए आयोजकों सहित छात्राओं को मुबारकबाद भेंट की।

कली राम डी.ए.वी. सफीदों में हुआ 151 कुण्डीय यज्ञ महोत्सव

कली राम डी.ए.वी. सफीदों के प्रांगण में 151 दयानंद के जन्मोत्सव व बोधोत्सव के उपलक्ष्य में कुण्डीय यज्ञ महोत्सव का आयोजन किया गया। आर्य युवा समाज हरियाणा के प्रधान एवं क्षेत्रीय निदेशक डॉ. धर्म देव विद्यार्थी की अध्यक्षता में आयोजित यज्ञ महोत्सव श्रद्धा व उत्साह से मनाया गया। 151 कुण्डीय महायज्ञ में 151 परिवारों ने यजमान बनकर पुण्य प्राप्त किया।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री सत्यपाल आर्य ,सहमंत्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा व सचिव, डी.ए.वी. प्रबन्धकर्तृ समिति, नई दिल्ली, विशिष्ट अतिथि–आचार्य अभय देव, निदेशक आर्य बाल भारती स्कूल पानीपत एवं इंजीनियर टी सी गर्ग, रिटायर्ड इंजीनियर इन चीफ, इरीगेशन डिपार्टमेट, आर्य युवा समाज हरियाणा के सदस्यों, हरियाणा डी.ए.वी. स्कूलों के प्राचार्यों एवं शिक्षकों ने भी महायज्ञ में आहुति देकर स्वयं को लाभान्वित किया। यज्ञ के ब्रह्मत्व का कार्य उपदेशक महाविद्यालय हिसार के प्राचार्य श्री प्रमोद योगार्थी द्वारा किया गया। इस भव्य कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य ''हम सब वैदिक सस्कृति को अपनाएँ'' था।

प्राचार्य वी के धवन ने सभी अतिथिगण एवं अभिभावकगण का हार्दिक स्वागत किया। मुख्यातिथि महोदय ने आर्य विद्वानों व संन्यासियों का सम्मान किया व अपने वक्तव्य में हवन यज्ञ की महिमा का वर्णन किया उन्होंने परमात्मा के ओ३म् नाम का महत्व बच्चों को विस्तार से समझाया।

डॉ. धर्म देव विद्यार्थी ने सफीदों में पहली बार 151 कुण्डीय यज्ञ महोत्सव आयोजन करने पर सफीदों वासियों को हार्दिक बधाई दी व कहा कि डी.ए.वी. व आर्य समाज का यही प्रयास है कि हमारे बच्चे वैदिक मूल्यों एवं नैतिक मूल्यों से जुड़कर आर्य (श्रेष्ठ) बनें और समस्त समाज को आर्य बनाएँ।

इस शुभ अवसर पर हिसार महाविद्यालय के प्राचार्य को महाविद्यालय में पढ़ने वाले निर्धन विद्यार्थियों के लिए 12 क्विंटल गेहूँ का दान किया यगा।

भजन कीर्तन व आर्य विद्वानों के प्रवचनों को सुनकर सभी श्रोता आनंद विभोर हो गए।

शांति पाठ से यज्ञमहोत्सव का समापन किया गया।

यज्ञ-सत्संग कार्यक्रम

यज्ञ समिति झज्जर के तत्वावधान में महर्षि दयानन्द शिक्षण केन्द्र झज्जर में यज्ञ–भजन–प्रवचन–अभिनन्दन समारोह मौ. भट्टी गेट में हर्षोल्लासपूर्वक सम्पन्न हुआ। भारत स्वाभिमान झज्जर की बेटियों–ने यज्ञ सम्पन्न करवाया। वैदिक सत्संग मंडल समिति झज्जर के प्रधान पं. रमेशचन्द्र कौशिक ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। मुख्य अतिथि समाज सेवी नै. ब्र. इन्द्रजीत जी ने कहा–जिस राष्ट्र के युवा जागरुक होते हैं, वह राष्ट्र उन्नति करता है। विवेकपूर्वक पुरुषार्थ से युवाओं को सफलता अवश्य मिलती है। आर्य समाज झज्जर के वैदिक विद्वान आचार्य शतक्रतु जी ने बताया कि प्रत्येक व्यक्ति दु:ख नहीं चाहता, वह सुख चाहता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति होती है–अपनी बुराइयों को दूर करने से तथा दूसरों की बुराइयों को दूर करने में मदद करने से होती है।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.**, डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक -- **पूनम सूरी**